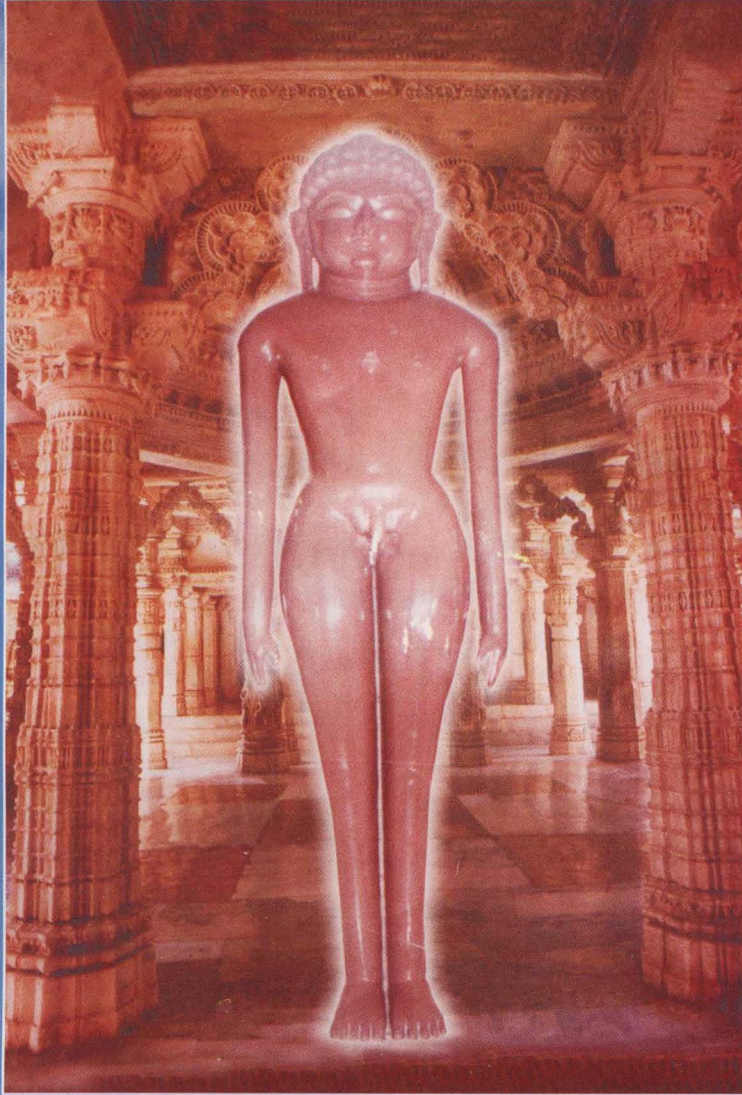


जिनभाषित

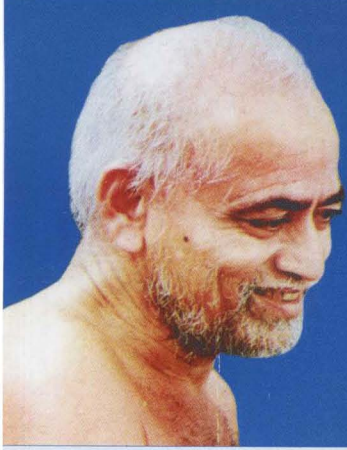
वीर निर्वाण सं. 2534



अतिशयकारी 1008 श्री शान्तिनाथ भगवान्
श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र
बीना जी - बारहा (सागर) म.प्र.

कार्तिक, वि.सं. 2064

नवम्बर, 2007



आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

1
सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त ।
सिद्धों को शुभ नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त ॥

2
अमर उमर भर भ्रमर बन, जिन-पद में हो लीन ।
उन पद में पद-चाह बिन, बनने नमूँ नवीन ॥

3
शिव-पथ-नेता जितमना, इन्द्रिय-जेता धीश ।
तथा प्रणेता शास्त्र के, जय-जय-जय जगदीश ॥

4
सन्त पूज्य अरहन्त हो, यथाजात निर्ग्रन्थ ।
अन्त-हीन-गुणवन्त हो, अजेय हो जयवन्त ॥

5
सार-सार दे शारदे, बनूँ विशारद धीर ।
सहार दे, दे, तार दे, उतार दे उस तीर ॥

6
बनूँ निरापद शारदे! वर दे, ना कर देर ।
देर खड़ा कर-जोड़ के, मन से बनूँ सुमेर ॥

7
ज्ञानोदधि के मथन से, करूँ निजामृत-पान ।
पार, भवोदधि जा करूँ, निराकार का मान ॥

8
ज्ञायक बन गायक नहीं, पाना है विश्राम ।
लायक बन नायक नहीं, जाना है शिव-धाम ॥

9
जीवन समझे मोल है, ना समझे तो खेल ।
खेल-खेल में युग गये, वहीं खिलाड़ी खेल ॥

10
खेल सको तो खेल लो, एक अनोखा खेल ।
आप खिलाड़ी आप ही, बनो खिलौना खेल ॥

11
दूर दिख रही लाल-सी, पास पहुँचते आग ।
अनुभव होता पास का, ज्ञान दूर का दाग ॥

12
यथा-काल करता गृही, कन्या का है दान ।
सूरि, सूरिपद का करे, त्याग जिनागम जान ॥

13
प्रतिदिन दिनकर दिन करे, फिर भी दुर्दिन आय ।
दिवस रात, या रात दिन, करनी का फल पाय ॥

14
खिड़की से क्यों देखता? दिखे दुखद संसार ।
खिड़की में अब देख ले, दिखे सुखद साकार ॥

15
राजा ही जब ना रहा, राजनीति क्यों आज?
लोकतन्त्र में क्या बची, लोकनीति की लाज ॥

16
वचन-सिद्धि हो नियम से, वचन-शुद्धि पल जायें ।
ऋद्धि-सिद्धि-परसिद्धियाँ, अनायास फल जायें ॥

17
सूक्ष्म वस्तु यदि न दिखे, उनका नहीं अभाव ।
तारा-राजी रात में, दिन में नहीं दिखाव ॥

18
दूर दुराशय से रहो, सदा सदाशय पूर ।
आश्रय दो धन अभय दो, आश्रय से जो दूर ॥

'सूर्योदयशतक' से साभार

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 1100 रु.
वार्षिक 150 रु.
एक प्रति 15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे आ.पृ. 2
- ◆ सम्पादकीय : हमारी परम्परा पुरुषार्थ की 2
- ◆ लेख
 - पिच्छिका-परिवर्तन : आवश्यकता और उद्देश्य : मुनि श्री समतासागर जी 4
 - भगवान् पार्श्वनाथ का विश्वव्यापक प्रभाव : मुनि श्री नमिसागर जी 6
 - एक ऐतिहासिक प्रवचन : क्षु. श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी 9
 - जैन परम्परासम्मत 'ओम्' का प्रतीक चिह्न 15
 - जर्मनी में जैनधर्म के कुछ अध्वेता : डॉ० जगदीशचन्द्र जैन 16
 - ख्याति पूजालाभ के लिए मंत्रतंत्रादि का प्रयोग मुनिधर्म नहीं : ब्र. अमरचन्द्र जैन 20
 - स्व० पं० नाथूलाल जी शास्त्री : माणिकचंद जैन 22
 - बुन्देलखण्ड और आचार्यश्री विद्यासागर जी : मालती मड़बैया 25
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 27
- ◆ काव्य
 - मुनिश्री क्षमासागर जी की कविताएँ आ.पृ. 3
 - दीपावली : मुनिश्री निर्णयसागर जी 14
 - गुरु के गुण अपार : सुशीला पाटनी 29
- ◆ संस्मरण
 - चरणकमल और करकमल : मुनिश्री कुन्थुसागर जी 3
 - आत्म-विश्वास : मुनिश्री क्षमासागर जी 5
- ◆ समाचार 8, 24, 30-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

हमारी परम्परा पुरुषार्थ की

हमारी श्रमणसंस्कृति पुरुषार्थ की संस्कृति हैं, बिना पुरुषार्थ के धन या वैभव की प्राप्ति चौरकर्म है, जिससे सुख की शीतल-छाँव कभी नहीं मिल सकती। हम जिसका निरन्तर स्मरण रखते हैं, वह यही कि मेरे द्वारा ऐसा कोई कार्य न हो जाये, जो हमारे दुःख का कारण बने। श्रम-सीकर बहाने के बाद जो सफलता मिलती है, वह आत्मिक प्रसन्नता एवं शांति के भाव पैदा करती है। हिम्मत और उत्साह कठिन से कठिन लक्ष्य को आसान बना सकते हैं। आँधी और तूफान भी तिनकों को उड़ा ले जाते हैं, किन्तु उनके अस्तित्व को समाप्त नहीं कर पाते, फिर हम तो मनुष्य हैं। हम स्वयं को तो सुखी बनाते ही हैं, दूसरे दुःखी जनों को भी सुखी बना सकते हैं। 'मृच्छकटिकम्' में आया है कि-

सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्तः।

विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति॥

अर्थात् संसार में प्रायः सभी जन सुखी एवं धनशाली मनुष्यों के शुभेच्छु हुआ करते हैं। विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के प्रियकारी दुर्लभ होते हैं।

यह मनुष्य का ही सौभाग्य और पुरुषार्थ है कि वह दूसरों के दुःखों को मेटने में समर्थ होता है। सम्यक् कृति का नाम संस्कृति है, जिसे भारतीय निरन्तर संवर्धित करते हैं। हर मन चाहता है कि वह बुद्धि, विचार, विवेक एवं कार्यों में कुशलता हासिल करे। आहार, निद्रा, भय और मैथुन, ये चार संज्ञाएँ पशु की तरह मनुष्य में हैं, किन्तु वह पशु नहीं है, क्योंकि उसके पास हिताहित का ज्ञान करानेवाली विवेकबुद्धि है। अंध पाशविक वृत्तियाँ काम, क्रोध, मोह, लोभ उसे नीचे की ओर गिराती हैं, किन्तु मनुष्य इन अंधवृत्तियों का दमनकर स्व का विकास चाहता है, स्व का विकास करता है। वह 'स्व' को भी 'पर' में वितरित कर स्वपरोपकारी हो जाता है, क्योंकि उसका लक्ष्य शांति है, सन्तोष है, प्रसन्नता है। इसलिए हमारी विकासयात्रा कभी भी 'जियो' पर समाप्त नहीं होती, बल्कि इसे 'जियो' के साथ 'जीने दो' पर ले जाना होता है। वेद-व्यास का भी मत है कि 'वीर पुरुष को चाहिए कि वह सदा उद्योग (पुरुषार्थ) ही करे, किसी के सामने नतमस्तक न हो, क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषत्व है। वीरपुरुष असमय में नष्ट भले ही हो जाये, परन्तु कभी शत्रु के सामने सिर न झुकाए।'।

सभी मनुष्य प्रसन्नता से रहना चाहते हैं, किन्तु याद रहे प्रसन्नता का नाटक करना बहुत मुश्किल होता है। सहज मुस्कान दुर्लभ है, किन्तु असंभव नहीं है। अच्छे कामों, सफलताओं, धार्मिकविचारों से प्रसन्नता बढ़ती है, इसलिए सदा मुस्कराइये। मुस्कराने की कोई कीमत नहीं लगती, किन्तु मुस्करा वे ही पाते हैं, जिनके चित्त प्रसन्न होते हैं, परोपकार से भरे होते हैं, पुरुषार्थ के विश्वासी होते हैं। विश्वास रखिए कि चेहरे पर खाली मुस्कराहट, वह बेशकीमती चीज है, जो आपकी स्वीकार्यता बढ़ा देती है और आपको सफलता के नजदीक ले जाती है। 'तिरुवल्लुवर' में आया है कि 'सौभाग्य का न होना किसी के लिए दोष नहीं है। समझकर सद्प्रयत्न न करना ही दोष है।' जो प्रयत्नशील है उनके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है। 'जॉर्ज बनाई शॉ' कहा करते थे-

तुम चीजों को देखते हो और कहते हो, ऐसा क्यों?

मैं चीजों को देखता हूँ और कहता हूँ, ऐसा क्यों नहीं?

पुरुषार्थ के लिए यह सकारात्मक सोच होना बहुत जरूरी है। जो नकारात्मक सोच रखते हैं वे स्वयं भी गिरते हैं और साथियों को भी गिराते हैं। यदि आप पुरुषार्थ करना चाहते हैं, तो आपको कौन रोक सकता है? चींटी जैसी कृशकाय जीव भी पहाड़ पर चढ़ जाती है। वह कितनी बार गिरती है, लेकिन अपना प्रयास नहीं छोड़ती और सफलता को प्राप्त करती है। मैंने एक मुक्तक इसी बात को लक्ष्यकर कहा कि-

एक चींटी पेड़ पर चढ़ जाती है, लगन की यही अदा हमें भाती है।

कामयाब होंगे हम भी एक दिन, दूर की मंजिल पास नजर आती है॥

आज विडम्बना है कि जिन्हें पुरुषार्थ का सम्यक् पाठ पढ़ाना था, वे ही पुरुषार्थ के स्थान पर उन खोटी प्रवृत्तियों में उलझा रहे हैं, जहाँ पतन और निराशा के अतिरिक्त कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। कोई ग्रहों का चक्कर बता रहा है, तो नवग्रह मंदिर बनाकर, पूजा-विधान रचकर भगवानों-तीर्थकरों को भी विभाजित कर रहा है, जबकि ग्रह अपनी गति से चलते हैं, चलना उनका स्वभाव है, चमकना उनका स्वभाव है, लेकिन बलिहारी है उन शिथिलाचारी संतों की, जो प्रेरक बनकर नवग्रह तीर्थों की रचना कर रहे हैं और तीर्थकरों में से ही दो इस ग्रह को शांत करेंगे, तो दो इस ग्रह को, इसतरह का मिथ्या उपदेश दे रहे हैं। कोई पूछे तो इनसे कि आचार्य नेमिचन्द्र क्या कहते हैं और आप क्या कह रहे हैं?

असुहादो विणिविन्ती, सुहे पविन्ती य जाण चारिन्तं।

वद-समिदि-गुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिण भणियं॥

अर्थात् अशुभक्रिया से निवृत्ति और शुभक्रिया में प्रवृत्ति चारित्र्य है। वह चारित्र्य व्रत, समिति, गुप्तिरूप है। यह ध्यातव्य है कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह-रूप क्रियाएँ अशुभ मानी गयी हैं। मन-वचन-काय की दुष्प्रवृत्ति, अभक्ष्य खान-पान, अविवेक-अयत्नाचार रूप प्रवृत्ति अशुभ क्रियाएँ हैं। पाँच व्रतरूप क्रियाएँ शुभ मानी गयी हैं। विवेकसम्मत यत्नाचाररूप प्रवृत्ति, योगी की शुभप्रवृत्ति, पंचेन्द्रिय विषयों में आसक्ति का अभाव, देव-शास्त्र-गुरु की वंदना, पूजा, दान, व्रताचरण आदि शुभ प्रवृत्तियाँ हैं। इनके लिए किया गया प्रयत्न ही सम्यक् पुरुषार्थ माना जाता है। आचार्यश्री सकलकीर्ति ने लिखा है-

भाति लब्धविषयव्यवस्थितिधीमतां लसतु लभ्यनिष्ठितिः।

तदद्भ्येष्टपरिपूर्णास्थितिः सज्जयेत्तु महतामहो मतिः॥

अर्थात् प्राप्त विषयों (भोगों या पदार्थों) की व्यवस्था करना तो सभी को सुहाता है और विद्वान् को अप्राप्त को प्राप्त करने की श्रद्धा हुआ करती है, किन्तु इन दोनों का समुचित रूप से प्राप्त होते रहना महात्माओं के लिए समीचीन मार्ग है। इसी का अनुसरण हम सभी को करना है, तभी सम्यक् पुरुषार्थ होगा। इसी से तेज, प्रताप, प्रसन्नता एवं शांति का पथ प्रशस्त होगा? एक सच्चा जैनी भाग्य को नकारता नहीं और कर्म-पुरुषार्थ को भूलता नहीं है। हमारे सामने हमारे 24 तीर्थकरों की पुरुषार्थ परम्परा है, इसी परम्परा का वरण करें और छोटे मार्ग और खोटी प्रवृत्तियों का त्याग करें।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

चरणकमल और करकमल

छपारा नगर में पंचकल्याणक के समय की यह बात है। एक दिन आचार्य गुरुदेव कक्ष में सामायिक में बैठे हुए थे। उसी समय कुछ जैनेतर बंधु आये और नमस्कार करते हुये गुरुदेव के श्री चरणों में श्रीफल समर्पित किया, दर्शन करके बहुत हर्षित हुए। साथ ही साथ वे कुछ अपने भावों को एक कागज में लिखकर लाये। चूँकि आचार्य श्री जी सामायिक में बैठे हुए थे, सज्जन ने उनके हाथों पर कागज रखा और नमस्कार करके चल गये।

सामायिक पूर्ण होने के उपरान्त आचार्यश्री ध्यान मुद्रा से उठे तब सभी महाराज जी वहाँ पहुँचे। आचार्य श्री जी ने कहा- वे यह नहीं जानते कि महाराज सामायिक कर रहे हैं। वे तो मात्र यही जानते हैं कि भक्तिभावपूर्वक नमस्कार करना चाहिए। एक चरणकमल होते हैं और एक करकमल होते हैं, इसलिए दोनों का उपयोग करके, लाभ उठाकर चले गये।

मुनि श्री कुंथुसागर संकलित 'संस्मरण' से साभार

पिच्छिका-परिवर्तन : आवश्यकता और उद्देश्य

मुनि श्री समतासागर जी
संघस्थ- आचार्य श्री विद्यासागर जी

दिगम्बरजैन मुनि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि श्रेष्ठ व्रतों का पालक होता है। ऋषि-परम्परा में जैनमुनि की अपनी एक मुद्रा है, पहचान है। मुद्रा सर्वत्र मान्य रही है। फिर चाहे वह शासकवर्ग हो, धार्मिकवर्ग हो अथवा व्यापारिकवर्ग हो। सर्वत्र मुद्रा (चिह्न) को मान्यता, पूज्यता मिली है। सभी धर्म-सम्प्रदायों में साधकों की अपनी-अपनी पहचान है। करपात्री, पदयात्री दिगम्बरजैन मुनि का स्वरूप भी निर्धारित है। नग्नत्व, केशलोच, शृंगार-रहितता, अपरिग्रहता, हिंसादि सावद्य कार्य से रहित और पिच्छिका यह मुनि का बाहरी स्वरूप है। इस मुनिचर्या में पिच्छिका, कमण्डलु और शास्त्र क्रमशः संयम-पालन, शुद्धि और ज्ञानाराधना के लिए आवश्यक उपकरण बतलाये गए हैं। जो साधना में सहायक/उपकारक हो, वह उपकरण कहलाता है। कमण्डलु नारियल का रहता है, यदा-कदा लकड़ी का भी उपयोग में ले सकते हैं। नियम यह है किसी धातु आदि का नहीं होना चाहिए। क्योंकि वह गृहस्थों के काम में आ सकते हैं। कमण्डलु में मुनिगण प्रासुक (गर्म) जल रखते हैं, जिसका उपयोग वह मात्र बाह्य शुद्धि में करते हैं।

पिच्छिका दिगम्बरजैन साधु का अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपकरण है जिसके बिना जैन साधु गमनागमन, पठन-पाठन आदि कोई प्रवृत्ति नहीं कर सकता। पिच्छिका प्रतिलेखन अर्थात् परिमार्जन में सहायक है। स्थूल जीव-जन्तु तो चलते-फिरते दिख जाते हैं, किन्तु बहुत से ऐसे सूक्ष्म जीव-जन्तु हैं जो रहते तो हैं, पर आँखों से दिखाई नहीं देते। ऐसे उन समस्त सूक्ष्म-स्थूल जन्तुओं को अपने उठने-बैठने आदि प्रवृत्ति से कोई कष्ट नहीं हो, उन सब की रक्षा हो इस भाव से पिच्छिका से परिमार्जन (बिना बाधा के उनको दूर करना, उनका संरक्षण करना) किया जाता है। यह पिच्छिका मयूरपंख की ही बनती है। अन्य पक्षियों के पंखों में वह विशेषता नहीं रहती जो मयूरपंख में रहती है। जैनशास्त्र मूलाराधना में लिखा है-

रजसेदाणमगहणं मद्दवसुकुमालदा लघुत्तं च।

जत्थेदे पंच गुणा तं पडिलिहणं पसंसति॥

जो धूलि और पसीना को ग्रहण न करती हो, मृदु हो, सुकुमार हो अर्थात् कठोर न हो और हल्की हो ऐसी

पिच्छिका प्रशंसनीय है। पिच्छिका में लगे मयूरपंख धूलि और पसीना, पानी आदि लग जाने पर थोड़ी ही देर में पूर्ववत् स्वच्छ हो जाते हैं। बहुत मुलायम होते हैं, उसके बालों का स्पर्श चींटी आदि जीवों को कष्टकर नहीं, बल्कि सुकुमारता के कारण सुखद प्रतीत होता है। पंख, भार में हल्का भी होता है। मयूर पक्षी पंख को स्वयमेव छोड़ते हैं, उन्हें पाने में मयूर की किसी तरह से हिंसा नहीं होती। ऋतु के अनुसार मयूर अपने पंखों का परित्याग प्रतिवर्ष करते हैं। उनके शरीर पर आए बड़े-बड़े और बहुत सारे पंख उनके गमनागमन में बाधक बनने लगते हैं। उनका भार मयूर को कष्टकर हो जाता है। इसलिये मयूर उन पंखों को अपनी सुख-सुविधा के लिए स्वेच्छा से ही छोड़ देते हैं। इसमें कोई प्रेरणा नहीं, उनकी प्रकृति है, स्वाभाविकता है। इन गिरे हुये पंखों को वनों में मुनिगण ग्रहण कर लेते हैं। श्रावकजन भी इन्हें प्राप्तकर मुनिगणों के पास तक भिजाते हैं। प्राप्त पंखों से मुनिगण अपनी पिच्छिका तैयार कर लेते हैं। एक वर्ष तक चलाने के लिए करीब 500-700 पंखों की पिच्छिका तैयार कर ली जाती है, ताकि वह वर्ष भर आसानी से चल सके। पंखों को सम्हालकर रखने के लिए उन्हें बाँधकर रखा जाता है। पिच्छिका का परिमार्जन (कोई कार्य करते समय पिच्छिका से साफ कर लेना) में उपयोग करते हैं, और ऐसा उपयोग करते-करते पिच्छिका के पंखों की मृदुता खत्म हो जाती है। करीब एक वर्ष तक उपयोग होते-होते पंख भी पुराने हो जाते हैं। चातुर्मास के अन्त में इसे बदलकर नई पिच्छिका ग्रहण कर ली जाती है। इस तरह पुरानी पिच्छिका अलगकर नई को ग्रहण कर लेना ही पिच्छिका-परिवर्तन है।

यह कार्य वैसे व्यक्तिगत भी हो सकता है, पर समाज के बीच संघ रहते हैं, समाज की संयम के इस उपकरण के प्रति बहुत आस्थाएँ जुड़ी रहती हैं अतः सभी जगह साधु-साध्वी संघों में चातुर्मास के अन्त में यह पिच्छिका परिवर्तन का कार्यक्रम समारोहपूर्वक रखा जाता है। जो व्यक्ति कुछ नियम-संयम लेकर (मुख्यरूप से ब्रह्मचर्य व्रत) धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ता है, उसे पुरानी पिच्छिका प्रदान कर दी जाती है, जिससे वह ग्रहण किए गए संयम की स्मृति-स्वरूप उसे अपने घर में रखता है और सदा

संयम की भावनाओं से जुड़ा रहता है। यह कार्य सिर्फ बाहरी लेन-देन का नहीं, बल्कि हृदयपरिवर्तन का कार्य है। अपनी जीवन-चर्या को सात्त्विक/संयमित बनानेवाले कुछ श्रावक गृहस्थ, मुनिगणों को नई पिच्छिका प्रदान करते हैं और कुछ पुरानी पिच्छिका ग्रहण करते हैं। संयम के इस सम्पूर्ण कार्य में वैराग्य और निर्ममत्व की प्रेरणा मिलती है। अत्यन्त कोमल, नयनाभिराम व सुन्दर होते हुए भी जब मयूर अपने पंखों का यथासमय स्वाभाविक रूप से त्याग कर देता है, उससे मोह नहीं करता, तब हमें भी वह पंख और पंखों से बनी पिच्छिका हमेशा-हमेशा वैराग्य और अपरिग्रह की प्रेरणा देती रहती है। अन्य पक्षियों के पंख को अशुद्ध, अस्पृश्य माना गया है लेकिन मयूर पंख की विशेषतायें कुछ अलग ही हैं। ज्ञात अज्ञात हैं ही कुछ ऐसी विशेषतायें जिनके कारण दिगम्बरजैन मुनि ने इसे स्वीकृत किया है। वैसे भी मयूरपंख में विद्या की कल्पना की जाती है और बाल-विद्यार्थी इसे विद्या मानकर पुस्तकों में रखते हैं। यदुवंश-शिरोमणि श्रीकृष्ण जी तो मोर-मुकुटधारी के नाम से प्रसिद्ध ही है। दिगम्बरजैन मुनि की

चर्या में इन पंखों से बनी पिच्छिका प्राणवत् मानी गई है। शौचोपकरण कमण्डलु के बिना फिर भी कुछ दिन मुनि काम चला सकता है। विहार में कमण्डलु हाथ में या साथ में न भी हो तो भी चल सकता है किन्तु पिच्छिका के बिना मुनि का विहार कहीं हो ही नहीं सकता। पिच्छिका मुनि की अत्यन्त आवश्यक उपकरण मानी गई है। जिसे मुनिगण हमेशा अपने पास में रखते हैं।

कमण्डलु ज्यादा दिनों तक चलता है, इसलिए उसे पिच्छिका की तरह प्रतिवर्ष बदलने की जरूरत नहीं पड़ती। टूट-फूट हो जाने पर कमण्डलु भी बदला जा सकता है, पर पिच्छिका पुरानी हो जाने के कारण, पंखों की मृदुता-सुकुमारता खत्म हो जाने के कारण प्रतिवर्ष बदलना आवश्यक ही हो जाती है। किसी परिस्थिति वश बीच में भी बदली जा सकती है। प्रयोजन सिर्फ इतना है कि जीवरक्षा के अहिंसक उद्देश्य की पूर्ति होना चाहिए। इस तरह पुरानी-पिच्छिका अलगकर नई ग्रहण करना ही पिच्छिका-परिवर्तन है।

आत्म-विश्वास

ईसरी में वर्षायोग पूरा हुआ। आचार्य महाराज ने कार्तिक पूर्णिमा के दिन कलकत्ता में प्रतिवर्ष होने वाले भगवान् पार्ष्वनाथ के उत्सव में पहुँचने का मन बना लिया, लेकिन हमेशा के अपने अतिथि-स्वभाव के अनुरूप किसी से बिना कुछ बताये कलकत्ता की ओर चल पड़े। लोगों में तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगीं। मार्ग दुर्गम है। मार्ग में श्रावकों के घर नहीं है। बड़ा अशान्त क्षेत्र है। बंगाल के लोग पता नहीं कैसा व्यवहार करेंगे। महाराज को वहाँ नहीं जाना चाहिए।

कलकत्ता से श्रावक आए। निवेदन किया कि "बंगाल सुरक्षित प्रदेश नहीं है। आप वहाँ पधारें, ऐसी हम सभी की भावना तो है, लेकिन भय भी लगता है।" आचार्य महाराज हमेशा की तरह मुस्कराए, अभय-मुद्रा में हाथ उठाकर आशीष दिया और आगे बढ़ गए।

यात्रा चलती रही। निरन्तर बढ़ते कदमों में गूँजता मंगल गान, लोगों के मन को आगामी मंगल का आश्वासन देता रहा और देखते-देखते साढ़े तीन सौ किलोमीटर की दूरी दस दिन में तय हो गई। ग्यारहवें दिन जब अपने संघ के साथ आचार्य महाराज ने

कलकत्ता में प्रवेश किया तब हजारों लोग उनके दृढ़-संकल्प के सामने सिर झुकाए खड़े थे। उस दिन वह महानगर, महाव्रती दिगम्बरजैन आचार्य की चरण-धूलि पाकर पवित्र हो गया।

बड़ा मंदिर से बेलगछिया तक हजारों लोगों के बीच उनका सहज भाव से गुजरना आम आदमी के लिए अद्भुत घटना थी। देखने वालों ने उस दिन यही कहा कि वेशकीमती साजो-सामान और विशाल जुलूस के बीच अनेक श्रमणों से परिवेष्टित जैनों के एक महान् आचार्य का दर्शन करके हम धन्य हो गए। उस दिन दुकानों पर खड़े लोगों और मकान के छज्जों से झाँकती हजारों आँखों ने बालकवत् यथाजात निर्ग्रन्थ श्रमण के पवित्र सौन्दर्य को देखकर और कुछ भी देखने से इंकार कर दिया।

सचमुच, विद्या-रथ पर आरूढ़ होकर, ख्याति, पूजा, लाभ आदि समस्त मनोरथों को रोककर, जो श्रमण-भगवन्त विचरण करते हैं, उनके दृढ़-संकल्प से धर्म-प्रभावना सहज ही होती रहती है।

मुनि श्री क्षमासागरकृत, 'आत्मान्वेषी' से साभार

भगवान् पार्श्वनाथ का विश्वव्यापक प्रभाव

मुनि श्री नमिसागर जी
आचार्य विद्यासागर जी संघस्थ

सभी जैन श्रावक यह जानते हैं कि जैनधर्म मानव समाज का सर्वप्राचीन धर्म है। जैनधर्म के सिद्धांत पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। पॉल मॅरेट्ट के अनुसार जहाँ आधुनिक विज्ञान समस्या में पड़ जाता है, वहाँ उसे बचाने वाला जैन धर्म है। जैन धर्म के चौबीस तीर्थकरों में भगवान् पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थकर हैं और उनके प्रभावक व्यक्तित्व से सभी जैन लोग परिचित हैं। वैसे तो सभी तीर्थकरों में समान रूप से क्षमता रहती है, और किसी भी भगवान् की भक्ति करने से समान रूप से पुण्य मिलता है, फिर भी देखा यह जाता है कि पार्श्वनाथ भगवान् विशेष लोकप्रिय हैं, खासकर दक्षिण भारत में। पार्श्वनाथ भगवान् की इस लोकप्रियता को देखकर ऐसा लगता है कि उन्होंने कुछ विशेष कार्य किया है।

जितना मैंने भगवान् पार्श्वनाथ का अध्ययन किया है, उससे ऐसा प्रतीत हुआ है कि वास्तव में भगवान् ने विशेष कार्य किया है। भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव विश्व के बड़े-बड़े दार्शनिकों पर पड़ा था। मैं बिना कोई संकोच के कह सकता हूँ कि कमठ का गर्व नष्ट करनेवाले भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव विश्वव्यापक था। आइए इन जन-जन के प्यारे; सबके पार्श्व में रहने वाले भगवान् पार्श्वनाथ (एक अजैन लेखक ने यह अर्थ किया है कि पार्श्वनाथ वे हैं, जो सबके पार्श्व में रहते हैं) के विश्व-व्यापक प्रभाव को संक्षेप से समझें-

कामताप्रसाद जी के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ का उल्लेख जावा-सुमात्रा के नौवीं सदी के शिलालेख में हुआ है। इससे यही विदित होता है कि उस सुदूर प्रदेश में भगवान् पार्श्वनाथ के भक्त थे, वहाँ पर भगवान् का आदर होता था। क्या अंगकोरवाट का मंदिर जो कि कंबोडिया में है, इसकी पुष्टि नहीं करता? महात्मा बुद्ध पर भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव सुस्पष्ट है। महात्मा बुद्ध ने चातुर्याम धर्म को अपनाया था। इस बात को बौद्ध दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान् धर्मानन्द कोसाम्बी ने स्वीकार किया है। महात्मा बुद्ध खुद अपने प्रारंभिक जीवन में भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। उन्होंने दिगम्बर मुनि का पद धारण किया था और जैन मुनियों के नियमों का पालन किया था। बाद में उन्हें जब

यह लगने लगा कि इस व्रत से केवल शरीर का क्षय हो रहा है और कुछ लाभ नहीं हो रहा है, तब उन्होंने अपना मध्यम मार्ग खोज निकाला। उनको वेदों के क्रियाकांड नहीं रुचे और साथ में जैन साधुओं का कठिन आचरण भी नहीं रुचा; इसी का नतीजा बौद्ध धर्म का उद्भव है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध भगवान् पार्श्वनाथ के ऋणी थे।

एक बात यहाँ विशेष रूप से याद रखना आवश्यक है कि 'बुद्ध' कहने से महात्मा गौतम बुद्ध को ही ग्रहण नहीं करना चाहिए; क्योंकि प्राचीन काल में जैन तीर्थकरों को भी 'बुद्ध' कहा जाता था, जैसा कि 'भक्तामर स्तोत्र' से पता चलता है। इसका और प्राचीन प्रमाण चाहिए तो षट्खण्डागम को ले सकते हैं, जिसमें एक सूत्र आता है 'णमो वड्डमाण बुद्ध रिसीणं'। एक और बात यह है कि गौतम कहने से भी केवल महात्मा बुद्ध का ही ग्रहण नहीं होता, क्योंकि गौतम के बुद्ध के पूर्व भी अनेक गौतम हो चुके हैं। इसको समझने में हमें चलना होगा चीन, मंगोलिया और टिबेट। स्कॉटलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् मेजर जनरल जे. जी. आर. फॉरलॉग साहब ने अपनी एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'शॉर्ट स्टडीज इन द सायन्स ऑफ कम्पैरेटिव रिलिजन्स.....' में एक गौतम का उल्लेख किया है जो कि भगवान् बुद्ध के पूर्व में हुये थे। वे लिखते हैं, "It is clear also that the Gotama of early Tibetans, Mangola (and) Chinese must have been a Jaina, for the latter say he lived in tenth and eleventh centuries B.C. Tibetans say he was born in 916, became a Buddha in 881, preached from thirty fifth year and died in 831 B.C., dates which closely correspond with those of the saintly Parsva. But the chinese date of the tenth and eleventh centuries points rather to Bodha kasyapa, whom they might hear of in Baktris or at the sources of the Indus in 'the Indu Holy-land,' and who is the peobable source of Taoism" पृ.-xix इसमें फॉरलॉग साहब यह स्पष्ट कर रहे हैं कि टिबेटियों के गौतम और कोई नहीं, बल्कि भगवान् पार्श्वनाथ हैं। ऐसा लगता है कि मंगोलिया के गौतम से उन्हें कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन चीनियों के गौतम को भगवान् पार्श्वनाथ

मानने में उनको आपत्ति है। यद्यपि फॉरलॉग साहब काश्यप बोध को जैन ही मानते हैं, लेकिन भगवान् पार्श्वनाथ नहीं मानते। इसमें मेरा यह कहना है कि तिथियों में थोड़ा सा हेरफेर होना कोई नई बात नहीं है, इतिहास में तो यह आम बात है; जैसा कि वे खुद भगवान् महावीर के बारे में अनेक मान्यताओं का उल्लेख करते हैं और फिर ५९८ ई.पू. को सही मानते हैं। मेरे अभिप्राय से भगवान् पार्श्वनाथ कब हुए इसके बारे में मतभेद हो सकते हैं और बहुत करके चीनियों का समय इसी का द्योतक है। मेरे अभिप्राय से समय का उल्लेख करने में मतभेद जरूर हैं लेकिन व्यक्ति एक ही है।

एक अन्य स्रोत से पता चलता है कि, डॉ. पी.सी. राय चौधरी का कहना है कि, “टिबेट में भी भगवान् पार्श्वनाथ का समवसरण गया था और जो वहाँ पर अहिंसा का प्रभाव देखने को मिलता है, वह पार्श्वनाथ भगवान का ही देन है।” इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विदेशों में भगवान् पार्श्वनाथ का बहुत ही प्रभाव था, उन्होंने करोड़ों अनार्यों को आर्य बनाया था। अब हम कुछ और प्रमाण देखेंगे, जिनसे हमारा विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा। मेजर साहब लिखते हैं, B.C. 580, Jaina-Bodhism story in North Kaspana.... Pg.61 इन सुदूर क्षेत्रों में जैन धर्म का शक्तिशाली होना एक विशेष बात है और यह श्रेय हम किसको दें? यह श्रेय निश्चय से भगवान् पार्श्वनाथ को है।

भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव चीन के एक सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व, जिनको आज भी विश्व में आदर प्राप्त है, पर पड़ा था, मेजर साहब इस विषय पर लिखते हैं, “Confucius who was a true chinaman, loving the plain and pratical, and here therefore totally different to laotseze, whose spiritual mysticism was an enudend out come of the teachings of the two last great Jaina saints, Parsvanath of 900, and Mahavira of 550. Theughtat the 7th century B.C. we have shown that theis religion pervaded central Asia from the mouth of the Oxue to the Hoangoho, and had its philosophik center at Kapila-Vastu.....” इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव ‘कन्फुसियस’ जैसे दिग्गज विद्वान् पर पड़ा था और साथ में यह भी समझ में आता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के तीर्थ में जैन धर्म का मध्य एशिया में जोरदार प्रभाव था। पाठक यह भी समझें कि इन लोगों के अन्धश्रद्धान का कोई पार नहीं था,

इन लोगों को हमारे आराध्य भगवान् पार्श्वनाथ ने धर्म सिखाया, जो कि एक अद्भुत कार्य है। इन लोगों की क्रूरता के बारे में लिखते हुए लिखा है कि “Like the early Aryans of the Rig Veda, these Tueanians offered human victims to their gods, especially to Sri-Bonga the Earth mother, and children to Kali and Basavi, and only after pelonged effortst a at great cost did the Baittoh Government manage to suppress the Merials or human sacrifices of these kolorian brethesn.” पृ.-१२२.

इस पर से पाठक अंदाजा लगा सकते हैं कि मध्य एशिया के लोगों में कितनी अन्धश्रद्धा थी, वे लोग बड़े और बच्चों तक की बली देते थे। मनुष्य-बली की प्रथा वेदिक आर्यों में भी थी, इसको भी नहीं भूलना चाहिए। ऐसी प्रथा मेजर साहब के अनुसार लगभग सारे विश्व में थी, इसके बारे में लिखने बैठें तो एक दूसरा ही बृहद लेख बन जायेगा। ऐसे इन क्रूर कर्मियों को धर्म सिखाया भगवान् पार्श्वनाथ ने। भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव मात्र एशिया में ही नहीं, बल्कि युरोप में भी था, उसी को संक्षेप में समझते हैं। दुनिया में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो ग्रीस (युनान) के सुप्रसिद्ध गणितज्ञ ‘पायथागोरस’ को नहीं जानता हो। गणितज्ञ होने के साथ वे एक दार्शनिक भी थे और पक्के शाकाहारी थे और यहाँ तक कि वे शाकाहार में भी कुछ चीजों का परहेज करते थे। इनकी यह चर्या जैनत्व को ही घोषित करती है। यदि हम पायथागोरस को जैन धर्मी न भी माने तो भी जैनधर्म का प्रभाव होना स्पष्ट है।

जैनधर्म की प्राचीनता (Antiquity of Jainism) नामक लेख मेरे पास उपलब्ध है जिसमें बताया गया है कि, “In his book, the Magic of Numbers, E.T. Bell (P.87) tells that once Pythagoras saw citizen beating his dog with a stick, where upon the merciful Philosopher shouted, “Stop beating that dog. In this howls of pain I recognise the voice of a friend... For such sin as you are committing he is now the dog of a house master. By the next turn the wheel of birth may make him the master and you the dog. May he be more merciful to you than you are to him. Only thus can he escape the wheel. In the name of Apollo, My father, stop or I shall be compelled to say on you the ten fold cases of the Teteractyas.” This reveals the effect of Jainism” यह स्पष्टतया जैनधर्म का सिद्धांत है और स्पष्ट करता है कि पायथागोरस पर

जैनधर्म का प्रभाव था। कुत्ते को मारने वाले मालिक से पायथागोरस कहते हैं कि 'इसे मत मारो... तुम अगले जन्म में कुत्ता हो सकते हो और यह कुत्ता तुम्हारा मालिक बन सकता है....।' इसी सदर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार ज्योतिप्रसाद जैन साहब का अभिप्राय उल्लेखनीय है, वे लिखते हैं, "The Greek philosopher Pythagoras born 580 B.C. who was a contemporary of Mahavira and Buddha belived in the theory of medamsychoisis, in the teams migration of souls, in the doctrin of Karina, refeained from the deotruction of life and eating meat and even regarded certain Vegetables. He even claimed to possess the power of recollecting his past births..... And since they were already professed in these for off lands at a time when Mahavir and Budda we just begining to preach, and since Here is no doubt that these ideas reached thithes from India its these remains no doubt that they owned their Propogation, if not to any earlies Tirthankara, at least certainly to Parsva and his disciples." यहाँ पर मेरे अभिप्राय से कोई शंका नहीं रह जाती कि उस सुदूर देश में भगवान् पार्श्वनाथ का प्रभाव

था, और पायथागोरस जैसे दिग्गज विद्वानों को भगवान् पार्श्वनाथ ने प्रभावित किया था। कर्मसिद्धांत की मान्यता, संसार परिभ्रमण की मान्यता, संसारचक्र से छूटना, सब्जियों में कुछ का निषेध आदि सभी बातें पूर्ण रूपेण जैनत्व का उद्घोष करती हैं, और इसका श्रेय 'जैन साहब' भगवान् पार्श्वनाथ को देते हैं।

सचमुच, हमें यह मानना पड़ेगा कि भगवान् पार्श्वनाथ ने लाखों-करोड़ों लोगों को धर्म सिखाया। जिन देशों में मनुष्यों का खून धर्म के नाम से बहता था ऐसे कुकृत्य को बंद करने का अद्भुत कार्य किया। भले ही पूर्ण रूपेण रूका नहीं तो भी काफी सफलता मिली, इसको तो मानना पड़ेगा। विश्व के अनेक धर्मों पर भगवान् का प्रभाव था। एक स्थान पर मिस. एलिजाबेत फ्रेजर का कहना है कि जीसस (ईसा) ने भगवान् पार्श्वनाथ का अनुसरण किया था, क्यों नहीं? जहाँ जीसस का जन्म हुआ था उस क्षेत्र में पहले से ही जैनधर्म का प्रभाव था। ऐसे इन महान् व्यक्तित्व, हमारे आराध्य, जन-जन के प्यारे भगवान् पार्श्वनाथ के चरणों में नमोस्तु करते हुये लेख समाप्त करता हूँ।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते'

लोकार्पण-समारोह सम्पन्न

श्रद्धेय बाबा सा. श्री रतनलाल जी पाटनी की द्वितीय पुण्य तिथि पर, श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी चेरिटीज के सौजन्य से आचार्य श्री धर्मसागर दि. जैन संस्थान के परिसर में नव निर्मित स्व० श्री भंवरलाल रतनलाल पाटनी स्मृति ब्लॉक का १० सितम्बर ०७ को भव्यतापूर्वक लोकार्पण समारोह संपन्न हुआ। समारोह के मुख्यअतिथि श्री लक्ष्मीनारायण जी दवे-वन पर्यावरण खान मंत्री, विशिष्ट अतिथि आर.के.पाटनी परिवार के श्री दीपचन्द्र जी चौधरी व शिक्षा उपनिदेशक श्री सुभाष जी मिश्र थे। पाटनी परिवार से सम्माननीय श्री कंवरलाल जी, अशोक जी, सुरेशजी, श्रीमती चतरदेवी जी, प्रेमदेवी जी, सुशीला जी, शान्ता जी एवं अनेक परिजन समारोह में उपस्थित थे।

नोरतमल जांझरी, सचिव,
आ.श्री धर्मसागर शिक्षण संस्थान
मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान

दृष्टिहीन मुकेश जैन राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित

छतरपुर नगर (म.प्र.) के बहुमुखी प्रतिभा के धनी दृष्टिहीन शिक्षक श्री मुकेश जैन को शिक्षक दिवस पर बुधवार को देश की पहली महिला राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभादेवी सिंह पाटिल ने दिल्ली के विज्ञान-भवन में आयोजित एक अत्यंत गरिमामयी समारोह में 'राष्ट्रपति सम्मान' से सम्मानित किया। उल्लेखनीय है कि बुधवार को वर्ष 2006 के राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित श्री मुकेश जैन, नवोदय विद्यालय मानपुर (जौरा) जिला-मुरैना में संगीत-शिक्षक के रूप में 18 वर्षों से पदस्थ हैं।

डॉ. सुमति प्रकाश जैन
बेनीगंज, छतरपुर म.प्र.

एक ऐतिहासिक प्रवचन

१०५ क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी

निमित्त-नैमित्तिक व्यवस्था, कार्य में निमित्त-उपादान की भूमिका, शुभ-उपयोग तथा अरहन्त-भक्ति की उपादेयता तथा सोनगढ़ की विचारधारा के सम्बन्ध में पूज्य वर्णी जी का एक विशेष वक्तव्य

प्रस्तावना

पूज्य श्री १०५ श्री क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी का प्रवचन, जो उन्होंने उदासीन आश्रम ईशरी में ता० ३१.३.५७ के मध्याह्नकाल के समय आश्रम के ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणियों तथा विद्वानों के समक्ष किया था और जिसको रिकॉर्डिंग मशीन में भर लिया गया था, उन्हीं शब्दों में लेखरूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सोनगढ़ के श्री कानजी स्वामी तीर्थराज श्री सम्मेद-शिखरजी की यात्रार्थ ता० ६.३.५७ को पहुँचे तथा उसी दिन पूज्य वर्णीजी से मिलने भी आये। पूज्य वर्णीजी भी ४-५ बार उनके पंडाल में गये। दिनांक १४.३.५७ को श्रीकानजी स्वामी ने श्री समयसार ग्रन्थ की आस्रव तत्त्व की गाथा पर प्रवचन किया। इस दिन के प्रवचन पर पूज्य श्री वर्णीजी ने कहा कि- इस आस्रव तत्त्व के श्री कानजी स्वामी के प्रवचन में मेरे को कोई विपरीतता नहीं लगी, यह आगमोक्त है।

बस, फिर क्या था? इसी बात को लेकर कुछ भाइयों ने कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, इन्दौर आदि जगहों पर जोरों से प्रचार कर दिया कि पूज्य वर्णीजी ने श्री कानजी स्वामी की मान्यताओं को मंजूर कर लिया है। बहुत से भाई असमंजस में पड़ गये। समाज में एक भ्रांति पैदा कर दी गई, जिसका निवारण करना अत्यावश्यक समझा गया। बहुत से भाइयों ने यह भी कहा कि हम सैद्धान्तिक गूढ़ तत्त्वों को तो समझते नहीं हैं, हम लोगों की पूज्य वर्णीजी के प्रति श्रद्धा है। वे इस सम्बन्ध में जो कहेंगे, वह हमें मान्य है। इस कारण से भी यह आवश्यक समझा गया कि इस सम्बन्ध में पूज्य श्री वर्णीजी का स्पष्टीकरण हो जाना आवश्यक है। इसलिए ता० ३०.३.५७ को श्री मांगीलाल जी पांड्या, श्री चांदमलजी बड़जात्या, श्री इन्द्रचन्द्र पाटनी, श्रीकल्याणचन्द्रजी पाटनी, श्रीनेमीचन्द्रजी छाबड़ा और मैं एवं श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार तथा श्री नेमीचन्द्रजी वकील सहारनपुर वाले, जो यहाँ आये हुये थे ईशरी गये और पूज्य वर्णीजी के सामने सारी परिस्थिति कह सुनाई। समाज में फैलाये जाने वाले भ्रम के निवारणार्थ रिकॉर्डिंग मशीन के सामने अपना खुलासा कर देने की प्रार्थना उनसे की गई। पूज्य वर्णीजी ने लोगों द्वारा किये जानेवाले ऐसे मिथ्या-प्रचार पर आश्चर्य प्रकट किया। ता० ३१.३.५७ को दोपहर के समय अपना प्रवचन मशीन में भर लेने की स्वीकारता उन्होंने दे दी।

इस प्रकाशन में उनके अपने शब्दों में निमित्त- नैमित्तिक सम्बन्ध, कार्य में उपादान की योग्यता के साथ निमित्त की सहायता की आवश्यकता, शुभोपयोग एवं भगवान् की भक्ति की आवश्यकता एवं साधनता के विषय में दिगम्बर जैनागम की जो आज्ञा है उसे प्रकाशित किया गया है तथा श्री कानजी स्वामी के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला गया है। ज्यों का त्यों प्रकाशन होने के कारण शब्दों की पुनरावृत्ति तथा बुन्देलखंड प्रान्त की बोली में मिश्रित होने के कारण भाषा की दृष्टि से कुछ अशुद्धियाँ रहना स्वाभाविक है पर इसमें पूज्य वर्णीजी के शब्दों से एक अक्षर का भी अन्तर नहीं है।

आशा है, मिथ्या भ्रम के निवारण में यह प्रकाशन सहायक होता हुआ सच्चे मार्ग के अवलम्बन में प्रेरक बनेगा।

बाबूलाल जैन जमादार

वर्णी जी का समयसार गाथा २७८-२७९ पर प्रवचन

'रागादयो बन्धनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोतिरिक्ताः ।

आत्मा परो वा किमु तन्निमित्तमिति प्रणुनाः पुनरेवमाहुः ॥

यहाँ पर रागादिक बन्ध का कारण है, यह अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है। रागादयः-रागादिक कैसे हैं, शुद्ध चिन्मात्रमहोतिरिक्ताः। शुद्ध चैतन्यमात्र-मह उससे अतिरिक्त। यहाँ पर शुद्ध से तात्पर्य 'केवल' का है। आत्मा उन रागादिक के होने में 'आत्मा परो वा किमु तद् निमित्त' ऐसा किसी ने प्रश्न किया कि रागादिक होने में आत्मा निमित्त है या और कोई निमित्त है ऐसा प्रश्न करने पर आचार्य उत्तर देते हैं-

जह फलिहमणी शुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।

रंजिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥

जैसे- स्फटिक मणि, केवल स्फटिक मणि स्वयं शुद्ध है। रागादयो-रागादिरूप जो लाल परिणमन है उसका स्वयं न परिणमन्ते, स्वयं न परिणमन्ते इसका क्या अर्थ है, परिणमते स्वयं ही हैं पर निमित्तमन्तरेण न परिणमन्ते इत्यर्थः। स्फटिक मणि स्वयं रागादिक रूप परिणमेगी, स्वयं न परिणमते इसका क्या अर्थ है, परके सम्बन्ध बिना स्वयं न परिणमते। पर के निमित्त बिना नहीं यथा मृत्तिका स्वयं घटरूपेण, परिणमते। मट्टी ही घटरूप परिणमते। यह बात नहीं है कि मृत्तिका घटरूप परिणमन को प्राप्त नहीं होती परन्तु कुम्भकारादि व्यापारमन्तरेण स्वयं न परिणमते इत्यर्थः। कुम्भकार आदि व्यापार के बिना केवल अपने आप तद्रूप परिणम जाय यह बात नहीं है। इसी तरह से आत्मा स्वयं फलिहमणि शुद्धो ण सयं परिणमति रागमाईहिं। शुद्ध, शुद्ध से तात्पर्य 'केवल' का है। 'ज्ञानी' का यह अर्थ नहीं लेना कि चौथे गुणस्थान से सम्यग्ज्ञानी, सो नहीं। स्वयं का अर्थ केवल स्वयं, केवल, केवल आत्मा जो है, अकेला एक। एक परमाणु में बंध नहीं होता। एक आत्मा में स्वयं रागादि परिणमन नहीं होता। रागादि भी स्वयं न परिणमन्ते। स्वयं न परिणमन्ते इत्यस्य कः अर्थ। स्वयं परिणमन को प्राप्त नहीं हुये इसका क्या अर्थ है। अर्थात् रागादि कर्मभिः सम्बन्धमंतरा न स्वयं परिणमन्ते। रागादि कर्मके सम्बन्ध के बिना वह स्वयं, केवल अकेला नहीं परिणमता। परिणमता स्वयं, पर रागादिसम्बन्धमंतरा न परिणमते। उसी का अमृतचन्द्र स्वामी अर्थ करते हैं- न खलु केवलाः स्फटिकोपलाः परिणामस्वभावत्वे सत्यपि स्वस्य शुद्धस्वभावत्वेन

रागादिनिमित्तत्वाभावात् रागादिभिः स्वयं न परिणमते। केवल स्फटिक को केवल, केवल माने अकेला शुद्ध पदार्थान्तर सम्बन्ध के बिना, परिणाम स्वभावे सत्यपि, परिणमन शील है परिणाम स्वभाव है। परन्तु स्वस्य माने केवल का शुद्ध स्वभावत्वेन रागादि निमित्तत्वाभावाद् रागादि निमित्तत्व का अभाव होने से रागादिभिः स्वयं न परिणमन्ते। स्फटिकोपलाः रागादि करके स्वयं न परिणमन्ते अर्थात् जपापुष्प सम्बन्धमन्तरेण, जपा पुष्प के संबंध के बिना केवल न परिणमते, जपापुष्प के सम्बन्ध कहते स्वयं स्फटिकोपलेव तुम्हारे रागादि भी परिणमते। पर द्रव्य नैव स्वयं रागादिभावपरिणमतया। परद्रव्य, जपापुष्पादि परद्रव्य, उनके स्वयं रागादिभाव परिणमतया। उनका स्वयं रागादि परिणमन स्वभाव है। स्वस्य रागादि निमित्तभूतेन स्वस्य स्फटिकोपल को रागादिक का निमित्तभूत होने पर शुद्ध स्वभावत्वे प्रच्यवमानेन उसको शुद्ध स्वभाव से च्युत कराता हुआ रागादि भी परिणमते। कौन? स्फटिकोपल रागादिरूप परिणम जाता है। यह तो दृष्टान्त हुआ। अब दार्ष्टान्त कहते हैं। तथा यथा स्फटिकोपल, जपापुष्प सम्बन्ध रागादिरूप परिणमता है एवं किल आत्मा परिणामस्वभावत्वे सत्यपि, परिणाम स्वभाव होने पर भी, यथा स्फटिकोपलपरिणाम स्वभाव होने पर जपापुष्पमन्तरेण रागादिरूप नहीं परिणमते तथा केवल आत्मा शुद्ध परिणाम स्वभाव होने पर भी स्वस्य, शुद्ध स्वभाव होने पर भी, स्वयं पर द्रव्यनिरपेक्षतया रागादि कर्म निरपेक्षतया स्वयं अपने आप रागादिरूप नहीं परिणमता। पर द्रव्य नैव स्वयं रागादि भाव परिणमतया, पर द्रव्य जो हैं स्वयं रागादिभाव परिणमन होने से स्वस्य रागादि निमित्तभूतेन, स्वयं को रागादि निमित्तभूत होने पर, शुद्ध स्वभाव से च्युत कराता हुआ रागादिभिः परिणमते रागद्वेषादिरूप परिणमन को प्राप्त हो जाती है। इति वस्तुस्वभावः। इस सबका निचोड़ अमृतचन्द्र स्वामी एक श्लोक में कहते हैं-

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्माऽऽत्मनो याति यथाऽर्ककान्तः ।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥

आत्मा कभी भी, याति माने कदाचित् भी अपने आप रागादिक का निमित्त होकर परिणमन को प्राप्त हो जाय सो बात नहीं है। यथा अर्ककान्त सूर्यकान्त मणि यथा सूर्यकिरण सम्बन्धमन्तरेण स्वयं अपने आप अग्निरूप

परिणमन को प्राप्त नहीं होता है। सूर्यकिरणसम्बन्ध प्राप्तः। सूर्यकिरण के सम्बन्ध को पाकर के अग्निरूप परिणमन जाता है। इस तरह से आत्मा स्वयं केवल, अकेला पर सम्बन्धमन्तरेण रागादिकरूप स्वयं न परिणमते। किन्तु तस्मिन् निमित्तम् परसंग एवं उसके परिणमन में निमित्त, परसंग ही है, उसके निमित्त को पाकर के आत्मा रागादिकरूप परिणम जाता है। यह वस्तु का स्वभावः उदेति यह वस्तु का स्वभाव है। इस प्रकार जो वस्तु के स्वभाव को जानते हैं वह ज्ञानी हैं, वे अपनी आत्मा को रागादिक नहीं करके कारक नहीं होते और जो ज्ञानी नहीं हैं वे कारक होते हैं। इसका तो तात्पर्य यही है।

संसार के अन्दर पदार्थ दो हैं- जीव और अजीव, अजीव पदार्थ के पांच भेद हैं। उसमें पुद्गल को छोड़ करके शेष चार जो अजीव हैं वे शुद्ध ही शुद्ध रहते हैं। दो जो पदार्थ हैं जीव और पुद्गल इन पदार्थों में दोनों प्रकार का परिणमन होता है- इनमें विभावशक्ति भी है इन दोनों पदार्थों में और अनन्तशक्ति भी है वह विभावशक्ति यदि न होती तो एक चाल ही होती। विभावशक्ति ही एक ऐसी चीज है कि जिसके द्वारा आत्मा में परिणमन होता है। पर पदार्थ का सम्बन्ध रहता है। पदार्थ-पदार्थ का सम्बन्ध आज का नहीं है। अनादिकाल का है। अनादिकाल का सम्बन्ध होने से आत्मा का वह रागादिकरूप, द्वेषादिकरूप, क्रोधरूप, मानरूप, माया-लोभादिकरूप जितना भी परिणमन है आत्मा का स्वभाव नहीं है- विभावशक्ति का है। विभावशक्ति, आत्मा के अन्दर है सो ऐसा परिणमन हो जाय, पर का निमित्त मिले तो उस रूप परिणम जाय, इस वास्ते हम सबको उचित है कि निमित्तकारणों को जो है, उतना ही आदर देवें जितनी कि आदर देने की जरूरत है। उपादान कारण पर भी उतना ही आदर देवें जितनी कि जरूरत है। उसको अधिक मानो या इसको अधिक मानो यह तत्त्व नहीं है। दोनों अपने अपने में स्वतंत्र है। उपादान भी स्वतंत्र है, वह कहे कि मैं निमित्त बिना परिणम जाऊँ तो कोई ताकत नहीं। केवल उपादान की ताकत नहीं है कि निमित्त न मिले और वह परिणम जाय, सो परिणमेगा वही परिणमित्त को पाकर के। जैसे कुम्भकार घट को बनाता है। सब कोई जानता है कि कुम्भकार घट को बनाता है। अगर कुम्भकार नहीं होय तो घट परिणाम के सम्मुख भी है और घट परिणाम की प्राप्ति के उन्मुख भी है। परन्तु कुम्भकारमन्तरेण बिना नहीं परिणम सकता। कुम्भकारादि निमित्त हो और बालू का

पुंज लगा हो तो घट का परिणमन हो जाय सो भी नहीं है। इस वास्ते उपादान और निमित्त दोनों अपने अपने में बराबर की चीज हैं। कोई न्यूनाधिक उसमें माने सो नहीं है। उसका कार्य उसमें होता है, इसका कार्य इसमें होता है। व्याप्य-व्यापक का भाव जो है, उपादान का, अपनी पर्याय के साथ होता है। निमित्त की पर्यायों के साथ नहीं होता। परन्तु ऐसा नहीं कि उसका कुछ भी सम्बन्ध न हो। यथा अन्तर व्याप्य-व्यापकभावेन मृत्तिकया घटः। मृत्तिका के द्वारा घट बनता है। अन्तर व्याप्यव्याप्येन मृत्तिकैव अनुभूयमाने, और मृत्तिका ही अनुभवन करती है और मृत्तिका में ही उसका तादात्म्य सम्बन्ध है। परन्तु बाह्य व्याप्य-व्यापक भाव कुछ नहीं सो बात नहीं है। व्याप्य-व्यापकभावेन, घट के अनुकूल व्यापार कुम्भकार करेगा तो घट होगा- तो व्यापारं कुर्वाणः कुम्भकार जो है वह घट को बनाने वाला है। और घट से जो तृप्ति हुई, जलादिक आकर जो तृप्ति हुई उसको अनुभवन करने वाला कौन है? कुम्भकार! इस कारण अगर निमित्त नैमित्तिक भाव न होवे तो तुम्हारे यहाँ पर मृत्तिका में घट नहीं बन सकता बहिः व्याप्यव्यापकभावेन उसके साथ सम्बन्ध है ही, अगर बहिव्याप्यव्यापकभाव अस्वीकार करो तो घटोत्पत्ति नहीं हो सकती। इस तरह से आत्मा में ज्ञानावरणादिक जो कर्म है सो पुद्गल द्रव्य स्वयं ज्ञानावरणादिक कर्मरूप परिणमता है। और आत्मा के मोहादिक परिणामों के निमित्त को पाकर के परिणमता है। अगर मोहादिक परिणाम निमित्त रूप में हों तो कभी भी तुम्हारे ज्ञानावरणादिक रूप पर्याय को प्राप्त नहीं होवें। इस वास्ते निमित्तकारण की भी आवश्यकता है। उपादानकारण की भी आवश्यकता है।

प्रश्न- श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार सहारनुपर- ज्ञान में जो कमी हुई, जीव का स्वभाव तो केवलज्ञान है और वर्तमान में जो हमारी संसारी अवस्था में जितने भी जीव हैं, उनके ज्ञान में जो कमी हुई, वह क्या कर्म के उदय की बजह से हुई या बिना कर्म के उदय की बजह से हुई।

उत्तर- पूज्य वर्णीजी महाराज- इसमें दोनों कारण हैं। कर्म का उदय कारण है और उपादान कारण आत्मा है। कर्म का उदय यदि न होय तो ज्ञान कभी भी न्यूनाधिक परिणमन को प्राप्त नहीं होगा।

विभाव और बात है। यह तो ज्ञानावरणादिक कर्म का इस प्रकार का क्षयोपशम है। तत् तरतमभाव से आत्मा

का ज्ञानादिक विकास होता है। जितना उदय होता है उतना अज्ञान रहता है और जितना ज्ञानावरणादिक कर्मका उदय होगा उतना ही अज्ञान रहेगा। जितना ज्ञानावरणादिक कर्म का क्षयोपशम होगा उतना ज्ञान रहेगा।

प्रश्न- श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार- कानजी स्वामी यह कहते हैं, महाराज, ज्ञानावरणादिक कर्म कुछ नहीं करते। अपनी योग्यता से ही ज्ञान में कमी-बेसी होती है। महाराज, ज्ञान में कमी होती है अपनी वजह से होती है, अपनी योग्यता से होती है, कानजी स्वामी यह कहते हैं। ज्ञानावरणादिक कर्म कुछ नहीं करता तो, महाराज, क्या यह ठीक है?

उत्तर- पूज्य वर्णीजी महाराज- यह ठीक है? आप ही समझो, कैसे ठीक है। यह ठीक नहीं है। चाहे कोई भी कहे, हम तो कहते हैं कि अंगधारी भी कहे तो भी ठीक नहीं है।

प्रश्न- बाबू सुरेन्द्रनाथ जी- महाराज, सम्यग्दृष्टि के पूजन, दान, व्रतादिक के आचरण ये मोक्ष के कारण हैं या नहीं?

उत्तर- पूज्य वर्णीजी महाराज- मेरी तो यह श्रद्धा है कि सम्यग्दृष्टि के चाहे शुभोपयोग हो, चाहे अशुभोपयोग हो, केवल नहीं होता है उसमें शुद्धोपयोग। अनन्तानुबन्धी कषाय जाने से शुद्धोपयोग का अंश प्रकट हो जाता है। जहाँ शुद्धोपयोग का अंश प्रकट हुआ तहाँ पूर्ण शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है, तो अल्प शुद्धोपयोग भी मोक्ष का कारण है। यानी कारणता तो उसमें आ गई, पूर्णता: आवो या न आवो। प्रवचनसार में अमृत चन्द्र स्वामी ने लिखा है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो है यह पूर्णता को प्राप्त होते हैं तब वीतरागतासहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वीतरागचारित्र सहित मोक्ष के ही मार्ग हैं। अतएव सरागात् अगर इनके अंश में जो राग मिला है तो जो राग है वह बंध का कारण है। जितना शुभोपयोग है वह बंधका कारण है। और जो शुद्धोपयोग है वह निर्जरा और मोक्ष का कारण है। सम्यग्दृष्टिका शुभोपयोग सर्वथा ही बंधका कारण हो, सो बात नहीं है।

प्रश्न श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार- महाराज ! जिसे मोक्षमार्ग रुचता है, उसे जिनेन्द्र देवकी भक्ति रुचती है या नहीं?

उत्तर- पूज्य वर्णीजी महाराज- मेरा तो विश्वास है कि जिसको मोक्षमार्ग रुचता है उसको जिनेन्द्रदेव की भक्ति तो दूर रही, सम्यग्दृष्टिकी जो बातें हैं वह सब उसको

रुचती हैं। ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां बंदे तद्गुणलब्धये। बड़े आचार्य थे, उमास्वामी। मोक्षमार्ग का निरूपण करना था, मंगलाचरण क्या करते हैं-

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, विश्वतत्त्वज्ञातारं अहं बंदे, काहे के लाने? तद्गुण लब्धये, तद्गुणों की लब्धि के लिए। तो उनमें जो भक्ति हुई, भगवान् की जो भक्ति हुई, स्तवन हुआ, भगवान् का जो स्तवन हुआ तो भक्ति स्तवन वगैरह का वर्णन किया- क्या चीज है? 'गुणस्तोकं समुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः'। वह स्तुति कहलाती है कि थोड़े गुण को उल्लंघन करके उसकी बहुत कथा करना, उसका नाम स्तुति है। भगवान् के अनन्त गुण हैं। वक्तुम् अशक्त्वात् उनके कथन को करने में अशक्त हैं। अनन्त गुण हैं। भक्ति वह कहलाती है कि गुणों में अनुराग हो, उसका नाम भक्ति है। भगवान् के अनन्तगुण हैं उनको कहने को हम अशक्त हैं, कह नहीं सकते। तो भी जैसे समुद्र का, कोई अमृत के समुद्र का अंतस्तल स्पर्श करने में असमर्थ है, अगर उसे स्पर्श हो जाय तो शांति का कारण है। तो भगवान् के गुणों का वर्णन करना दूर रहा, उसका स्मरण भी हो जाय तो हमको संसारताप की व्युच्छित्ति का कारण है। इस वास्ते भगवान् का जो स्तवन है वह गुणों में अनुराग है। गुणों में अनुराग कौन-सी कषाय को पोषण करने वाला है? जिस समय भगवान् की भक्ति करोगे अनन्त ज्ञानादिक गुणों का स्मरण ही तो होगा। अनन्त ज्ञानादिक गुणों के स्मरण होने में कौन सी कषाय की पुष्टि हुई। क्या क्रोध पुष्ट हुआ, या मान पुष्ट हुआ, या माया पुष्ट हुई, या लोभ पुष्ट हुआ? तो मेरा तो यह विश्वास है कि उन गुणों को स्मरण करने से नियम से अरहंत को द्रव्य, गुण पर्याय करके जो जानता है यह परोक्ष में अरहंत हैं, वह साक्षात् अरहंत है। वह परोक्ष में वही गुण तो स्मरण कर रहा है। तो भगवान् की भक्ति तो सम्यग्ज्ञानी ही कर सकते हैं। मिथ्यादृष्टि नहीं। परन्तु कब तक? तो 'पंचास्तिकाय' में कहा कि भगवान् की भक्ति मिथ्यादृष्टि भी करता है और सम्यग्दृष्टि भी करता है। परन्तु यह जो है, उपरितन गुणस्थान चढ़ने को असमर्थ है, इस वास्ते अस्थानरागादिक निवर्तन अस्थान जो है कुदेवादिक, उनमें रागादिक न जाय, अथवा तीव्र रागज्वर निरोधात्मा उसको प्रयोजन, कहा है कि तीव्र रागज्वर मेरा चला जाय, इसलिये वह भगवान्

की भक्ति करता है। इस वास्ते जो श्रेणी मांडते हों वे उत्तम पुरुष हैं। उनको तो वस्तुविचार रहता है। उनकी तो आत्मा की तरफ दृष्टि है। नहीं जाने घट की, न पट की। कोई पदार्थ चिन्तवन में आ जाय तो वह विष का बीज रागद्वेष था वह उनका चला गया। हमारा विष का बीज रागद्वेष बैठा है। इस वास्ते भगवान की भक्ति, उनके गुणों का चिन्तवन करने से रागद्वेष की निवृत्ति होती है। अतएव सम्यग्दृष्टि को भगवान की भक्ति करनी ही चाहिए।

अपने विरोधी मानकर, जैनधर्म तो रागद्वेष रहित है कोई उनका अंतरंग से विरोधी नहीं है। भैया, कोई भी मनुष्य जो है, कानजी स्वामी का विरोधी नहीं है। वह तो यह चाहता है कि तुम जो इतना-इतना भूल पकड़े हो, इससे तो तमाम संसार उल्टा डूब जायेगा। वह दो हजार के भले की बात कहते हों वह तो उल्टा डूबने का मार्ग है मिथ्यात्व का अंश ही बुरा होता है। अरे हमारी बात रह जाय, वह बात काहे की। जब पर्याय ही चली जाय, जिस पर्याय में अहंबुद्धि है, तब बात काहे की है। तुम्हारा यह पर्याय सम्बन्धी सुन्दरता और आयु का अन्त। अरे सुन्दरता तो अब ही चली जाय। द्रव्य से विचार करो, वह रख लेवें? अब ये जवान हैं, रख लेवें कि हम ऐसे ही बने रहें, नहीं रख सकते। अरे तुम जो बोलना चाहो उसको भी नहीं रख सकते। क्यों? वह तो उदय में आकर खिर ही जायगा। इस वास्ते बात तो यह हम अभी भी कहते हैं कि स्थितिकरण की आवश्यकता है-

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।

प्रत्यवस्थपनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥

हमको तो शत्रुभाव उनमें रखना ही नहीं चाहिए। कषाय के उदय में मनुष्य क्या-क्या काम करता है- कौन नहीं जानता है। सब कोई जानते हैं। हम तो कहते हैं अब भी समझाने की आवश्यकता है, अब भी उपेक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा व्यवहार करो कि वह समझ जाय। बड़े से बड़े पाप समझो कि जो नाहरी-उसका पेट विदारण कर दिया अपने बच्चे का, सुकोशल मुनिका। वह नाहरी जब विदारण कर दीया कि मुनि उनके पिता यशोधर वहाँ आये। वह केवलज्ञान निर्वाण की पूजा करने वगैरह को। उससे कहते हैं कि जिस पुत्र के वियोग से यह दशा भई आज उसी को विदार दिया? तो उसी समय उसके परिणामों ने पलटा खाया, वह सिर धुनने लगी। अरे सिर धुनने से क्या होता है। तो महाराज अब तो पाप का

प्रायश्चित्त यही है कि इस पाप का प्रायश्चित्त यही है- किसका? कि सबका त्याग करो! तब इससे बढ़कर क्या कर सकती थी। और जब नाहरी जैसी सुधर जाती है तो मनुष्य न सुधर जाय? मगर यह बात, हमारे मन में यह कल्पना नहीं होनी चाहिए कि ये हमारे विरोधी हैं। वह कषाय के उदय में बोलता है। बड़े-बड़े बोलते हैं क्या बड़ी बात है। रामचन्द्र जी कषाय के उदय में छह महीने मुर्दा को लिये फिर, सीता का वियोग हुआ तो मुनि से पूछते हैं कोई उपाय है, बताओं तो हमारा कल्याण कैसे होगा। तद्भव मोक्षगामी, देशभूषण कुलभूषण से सुन चुका और एक स्त्री के वियोग में इतना पागल हो गया। अरे तुम बता तो दो जरा, कहो हमारा भला कैसे होगा? तो उन्होंने वही उत्तर दिया जो देना था- सीता के वियोग का उत्तर नहीं दिया। यह उत्तर दिया कि जब तक लक्ष्मण से स्नेह, तब तक तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। और जिस दिन लक्ष्मण से स्नेह छूटा, कल्याण हो गया। देख लो उसी दिन हुआ। मेरी समझ में तो आप लोग विद्वान् हैं, सब हैं, कोई ऐसी चिट्ठी लिखो जिससे सब वह छूट जाय। हम तो यही कहेंगे भैया और अन्त तक यही कहेंगे- चाहे वे विरोधी बने रहें, चाहे वह छपा देवें कि हमारा मत इन्होंने स्वीकार कर लिया- जो उनकी इच्छा है- उसमें हम क्या कर सकते हैं। उनके पण्डाल में नियम से तीन दिन, चार दिन गये उनका सुना, करा, सब कुछ किया, उन्होंने जो अभिप्राय लगाया हो और आप लोगों ने जो लगाया हो अभिप्राय। मगर हम जो गये, हमारा भीतर का तात्पर्य यही था कि- हे भगवान्! ये मिल जाय, तो एक बड़ा भारी उपकार जैनधर्म का होय। अरे शिखरजी से निर्मल क्षेत्र और कौन है कि जहाँ पर नहीं होने की थी बात। हम क्या करें बताओं? बात ही नहीं होनी थी। हमारे वश की बात तो नहीं थी। अच्छा और भिड़ाने वाले उनके अन्दर ऐसे होते ही हैं- हर कहीं ही ऐसे होते हैं जैसे मन्त्री तो शनि भये और राजा होय बृहस्पति। और मंत्री ही तो शनि बैठे, राजा वृहस्पति होने से क्या तत्त्व होय। वह तो अच्छी ही कहे मगर तोड़ने मरोड़ने वाले तो वहाँ बैठे हैं। बीच में मंत्री बैठा है, सो बताईये कि कैसे बने। हम तो यह कहें कि सम्यक्त्व के तो आठ अंग बताये, जिसमें दर्शनाच्चरणाद्वापि। दर्शन यानि श्रद्धा से च्युत हो जाय कदाचित् चारित्र से च्युत हो जाय। दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः। फिर उसी में स्थापित करना उसी का नाम

स्थितिकरण है और वात्सल्य जो है।

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।

प्रतिपत्ति-र्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलष्यते ॥

अपनी ओर से जो कोई हो, अपने में मिलावो। तत्त्व तो यह है भैया। और यह सम्यग्दृष्टि बने हो तो आठ अंग नहीं पालोगे? आठ अंग तो तुम्हारे पेट में पड़े हैं। क्योंकि वृक्ष चले और शाखा नहीं चले सो बात नहीं हो सकती। अगर सम्यग्दृष्टि बने हो तो आठ अंग होना चाहिए। यहाँ जोर दिया समन्तभद्र स्वामि ने- नाङ्गहीनमलं छेन्तुं...

जन्मसन्तति को अंगहीन सम्यग्दर्शन छेदन नहीं कर सकता। यह सांगोपाङ्ग होना चाहिए। कोई यहीं से टल जाय तो नीचे लिख दिया है कि एक एक अंग के जो उदारहण दिये वे तो हम लोगों को लिख दिये। और जो पक्के ज्ञानी हैं उनके तो आठ ही अंग होना चाहिए। इस वास्ते हम तो कहते हैं कि स्थितिकरण सबसे बढ़िया है। और आप लोग सब जानते हैं। हम क्या कहें?

एक बात हो जाती तो सब हो जाता। 'निमित्त कारण को निमित्त मान लेते तो सब हो जाता।'

दीपावली

मुनि श्री निर्णयसागर जी
संघस्थ-आचार्य श्री विद्यासागर जी

जीवन की कहानी में, आरंभ भी है, अंत भी।
समय के उपवन में, पतझड़ भी है, बसंत भी।

दीपावली
वर्ष में एक बार मनाते हैं,
हम
भगवान् महावीर के संदेश
(जियो और जीने दो)
जन-जन को सुनाते हैं।
और उन्हीं दिनों
हम
उस पर, कहाँ चल पाते हैं।
सारी रात
अपने ही हाथ
आतिशबाजी चलाते हैं
लाखों जीवों का जीवन मिटाते हैं।
और हमारे नौजवान साथी
कहाँ जुआ छोड़ पाते हैं?
वह तो
जुए में सारी रात जाग जाते हैं।
न मालूम, हम ऐसे

कितने पाप कमाते हैं?
कहाँ हम दीपावली मनाते हैं?
सब लोग घरों में
मिठाइयाँ खाते हैं,
और
दीपक की रोशनी लगाते हैं,
फिर भी, जीवन में
प्रकाश नहीं
अँधेरा ही पाते हैं
कहाँ हम दीपावली मनाते हैं?
बुरा न मानो
बंधुओ!
हम दीपावली के नाम पर
महावीर को लजाते हैं
यूँ ही जीवन के कई वर्ष निकल जाते हैं!
न हम दीपावली मनाते हैं,
न हम महावीर को मान पाते हैं।
दीपावली वर्ष

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो ।

पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेड्डी ॥

जैनागम में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु यानी मुनि रूप पाँच परमेष्ठी ही आराध्य माने गए हैं। इनके आद्य अक्षरों को परस्पर मिलाने पर 'ओम्'/'ओं' बन जाता है। यथा, इनमें से पहले परमेष्ठी 'अरिहन्त' या 'अर्हन्त' का प्रथम अक्षर 'अ' को लिया जाता है। द्वितीय परमेष्ठी 'सिद्ध', शरीररहित होने से 'अशरीरी' कहलाते हैं। अतः 'अशरीरी' का प्रथम अक्षर 'अ' को 'अरिहन्त' के 'अ' से मिलाने पर अ+अ='आ' बन जाता है। इसमें तृतीय परमेष्ठी 'आचार्य' का प्रथम अक्षर 'आ' मिलाने पर आ+आ मिलकर 'आ' ही शेष रहता है। उसमें चतुर्थ परमेष्ठी 'उपाध्याय' का पहला अक्षर 'उ' को मिलाने पर आ+उ मिलकर 'ओ' हो जाता है। अंतिम पाँचवें परमेष्ठी 'साधु' को जैनागम में 'मुनि' भी कहा जाता है। अतः मुनि के प्रारम्भिक अक्षर 'म्' को 'ओ' से मिलाने पर ओ+म्=ओम् या 'ओं' बन जाता है। इसे ही प्राचीन लिपि में ॐ के रूप में बनाया जाता रहा है।

'जैन' शब्द में 'ज', 'न' तथा 'ज' के ऊपर 'ऐ' संबंधी दो मात्राएँ बनी होती हैं। इनके माध्यम से ही जैन परम्परागत 'ओं' का चिह्न बनाया जा सकता है। इस 'ओम्' के प्रतीक चिह्न को बनाने की सरल विधि चार चरणों में निम्न प्रकार हो सकती है-

1. 'जैन' शब्द के पहले अक्षर 'ज' को अंग्रेजी में 'जे'=J लिखा जाता है। अतः सबसे पहले 'जे'-J को बनाएँ।
2. तदुपरान्त 'जैन' शब्द में द्वितीय अक्षर 'न' है। अतः उस 'जे'-J के भीतर/साथ में हिन्दी का 'न' बनाएँ।
3. चूँकि 'जैन' शब्द में 'ज' के ऊपर 'ऐ' संबंधी दो मात्राएँ होती हैं। अतः प्रथम मात्रा के प्रतीक स्वरूप उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु बनाएँ।
4. तदुपरान्त द्वितीय मात्रा के प्रतीक स्वरूप उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु के दाएँ बाजू में 'रेफ' जैसी आकृति बनाएँ।

इस प्रकार जैन परम्परा सम्मत ॐ यानी 'ओम्'/'ओं' की आकृति निर्मित हो जाती है।

जैन परम्परा की अनेक मूर्तियों की प्रशस्तियों, हस्तलिखित ग्रन्थों, प्राचीन शिलालेखों एवं प्राचीन लिपि में भी इसी प्रकार से ॐ 'ओम्'/'ओं' का चिह्न बना हुआ पाया जाता है। वस्तुतः प्राचीन लिपि में 'उ' के ऊपर 'रेफ' के समान आकृति बनाने से वह 'ओ' हो जाता था। और उसके साथ चन्द्रबिन्दु प्रयुक्त होने से वह 'ओम्'/'ओं'- ॐ बन जाता था। किन्तु वर्तमान में हस्तलिखित ग्रन्थ पढ़ने अथवा उनके लिखने की परम्परा के अभाव हो जाने के कारण अब प्रिंटिंग प्रेस में छपाई का कार्य होने लगा है। हम लोगों की असावधानी अथवा अज्ञानता के कारण प्रिंटिंग प्रेस में यह परिवर्तित होकर अन्य परम्परा मान्य 'ऊँ' बनाया जाने लगा। इसके दुष्परिणाम स्वरूप हम लोग जैन परम्परा द्वारा मान्य ॐ चिह्न को प्रायः भूल से गए हैं। और ऊँ को ही भ्रमवश जैन परम्परा सम्मत मान बैठे हैं।



जैन परम्परा सम्मत इस ॐ को Shree लिपि के Symbol Font Samples के अन्तर्गत नं. 223 में N तथा नं. 231 में J को Key Strock करके प्राप्त किया जा बनाया जा सकता है। संभव है इसके अतिरिक्त 'की पार्ट' में अन्यत्र भी यह चिह्न उपलब्ध हो सकता है।

इस प्रकार जैन परम्परा को सुरक्षित रखने हेतु सभी मांगलिक शुभ अनुष्ठानों, पत्र-पत्रिकाओं, विज्ञापनों, ग्रीटिंग्स, होर्डिंग्स, बैनर, नूतन प्रकाशित होनेवाले साहित्य, स्टीकर्स, बहीखाता, पुस्तक, कापी, दीवाल आदि पर जैन परम्परा द्वारा मान्य ॐ का प्रतीक चिह्न बनाकर इसका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार किया/कराया जा सकता है। इस संबंध में जैनधर्म में प्रभावनातर पूज्य आचार्यदेव, साधुगण, साध्वियाँ, विद्वत्मनीषी, प्रवचनकार भी अपने धर्मोपदेश के समय जैन परम्परागत इस ॐ 'ओम्' की जानकारी तथा इसे बनाने की प्रायोगिक विधि भी जन सामान्य को बतलाकर अर्हन्त भगवान् के जिन-शासन के वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर/करा सकते हैं। इसे बनाने की विधि सुन-समझकर धार्मिक पाठशालाओं में अध्ययनरत बालक-बालिकाएँ भी परिचित होकर भविष्य में इसे ही बनाना प्रारंभ कर सकेंगे।

जर्मनी में जैनधर्म के कुछ अध्येता

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, मुम्बई

उन्नीसवीं शताब्दी का आरम्भ यूरोप में ज्ञान-विज्ञान की शताब्दी का युग रहा है। यह समय था जब जर्मनी के फ्रीडरीख श्लीगल को संस्कृत पढ़ने का शौक हुआ और उन्होंने पेरिस पहुँचकर हिन्दुस्तान से लौटे हुए किसी सैनिक से संस्कृत का अध्ययन किया। आगे चलकर इन्होंने द लैंग्वेजेज एण्ड विजडम ऑफ द हिन्दूज (हिन्दूओं की भाषायें और प्रज्ञा) नामक पुस्तक प्रकाशित कर भारत की प्राचीन संस्कृत से यूरोपवासियों को अवगत कराया। इसी समय फ्रीडरीख के लघु भ्राता औगुस्ट विलहेल्म श्लीगल ने अपने ज्येष्ठ भ्राता से प्रेरणा पाकर संस्कृत का तुलनात्मक एवं गम्भीर अध्ययन किया और वे वॉन विश्वविद्यालय में १८१८ में स्थापित भारतीय विद्या चेयर के सर्वप्रथम प्रोफेसर नियुक्त किये गये।

मैक्समूलर इस शताब्दी के भारतीय विद्या के एक महान् पण्डित हो गये हैं, जिन्होंने भारत की सांस्कृतिक देन को सारे यूरोप में उजागर किया। ऋग्वेद को सायण भाष्य के साथ उन्होंने सर्वप्रथम नागरी लिप्यन्तर किया और जर्मन भाषा में उसका अनुवाद प्रकाशित किया। इंग्लैण्ड में सिविल सर्विस में जाने वाले अंग्रेज-नवयुवकों के मार्गदर्शन के लिये उन्होंने कैम्ब्रिज लैक्चर्स दिये, जो 'इण्डिया, ह्याट इट कैन टीच अस' (भारत हमें क्या सिखा सकता है) नाम से प्रकाशित हुए। 'सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट' सीरीज के सम्पादन का श्रेय मैक्समूलर को ही है जिसके अन्तर्गत भारतीय विद्या से सम्बन्धित अनेकानेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

यूरोप में जैनविद्या के अध्येताओं में सर्वप्रथम हरमन याकोबी (१८५०-१९३७) का नाम लिया जायेगा। वे अलब्रेख्त बेबर के शिष्य थे जिन्होंने सर्वप्रथम मूलरूप में जैनआगमों का अध्ययन किया था। याकोबी ने वराहमिहिर के लघु जातक पर शोधप्रबन्ध लिखकर पी०एच०डी० प्राप्त की। केवल २३ वर्ष की अवस्था में जैन हस्तलिखित प्रतियों की खोज में वे भारत आये और वापिस लौटकर उन्होंने 'सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट' सीरीज में आचारांग और कल्पसूत्र तथा सूत्रकृतांग और उत्तराध्ययन आगमों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। निःस्पन्देह इन ग्रन्थों के अनुवाद से देश-विदेश में जैनविद्या के प्रचार में अपूर्व

सफलता मिली। यूरोप के विद्वानों में जैनधर्म और बौद्धधर्म को लेकर, अनेक भ्रांतियाँ और वादविवाद चल रहे थे। उस समय याकोबी ने जैनधर्म और बौद्धधर्म ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा बौद्धधर्म के पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध करके इन भ्रांतियों और विवादों को निर्मूल करार दिया।

जैनआगमों के अतिरिक्त प्राकृत तथा साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने पथप्रदर्शन का कार्य किया। याकोबी ने जैन आगम व साहित्य की टीकाओं में से कुछ महत्त्वपूर्ण कथाओं को चुनकर 'आउरागेवेल्टे ऐरजेकलुगान इम महाराष्ट्री' (सेलेक्टेड स्टोरीज इन महाराष्ट्री) नाम से प्रकाशित की। इन कथाओं के सम्पादन के संग्रह में प्राकृत का व्याकरण और शब्दकोष भी दिया गया।

१९१४ में याकोबी ने दूसरी बार भारत की यात्रा की। अबकी बार हस्तलिखित जैनग्रन्थों की खोज में वे गुजरात और काठियावाड़ की ओर गये। स्वदेश वापिस लौटकर उन्होंने भविसत्तकहा और सणक्कुमारचरिउ नामक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश ग्रन्थों का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया। इस यात्रा में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डॉक्टर ऑफ लैटर्स' और जैन समाज ने 'जैनदर्शन-दिवाकर' की पदवी से सम्मानित किया।

यूरोप में प्राकृत-अध्ययन के पुरस्कर्ताओं में रिचर्ड पिशल, (१८४९-१९०८) का नाम भी काफी आगे रहेगा। पिशल, ए० एफ० स्टेन्त्लर के शिष्य थे जिनकी 'एलिमेण्टरी ग्रामर आफ संस्कृत' आज भी जर्मनी में संस्कृत सीखने के लिये मानक पुस्तक मानी जाती है। प्राकृत के विद्वान वेबर के लैक्चरों का लाभ भी पिशल को मिला था। उनका कथन था कि संस्कृत के अध्ययन के लिये भाषाविज्ञान का ज्ञान व अध्ययन आवश्यक है और उनके अनुसार यूरोप के अधिकांश विद्वान् इस ज्ञान से वंचित थे।

ग्रामेटीक डेर प्राकृत स्प्रेशेन (द ग्रामर आफ प्राकृत लैन्ग्वेजेज) पिशल का एक विशाल स्मारक ग्रन्थ है जिसे उन्होंने वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद अप्रकाशित प्राकृत-साहित्य की सैकड़ों हस्तलिखित पांडुलिपियों के आधार से तैयार किया था। जिसमें उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राकृतों का विश्लेषण कर इन भाषाओं के नियमों का

विवेचन किया। मध्ययुगीन आर्यभाषाओं के अनुपम कोष हेमचन्द्र की देशीनाममाला का भी बुहलर के साथ मिलकर, पिशल ने आलोचनात्मक सम्पादन कर एक महान् कार्य सम्पन्न किया। इन ग्रन्थों में प्राकृत एवं अपभ्रंश के ऐसे अनेकानेक शब्दों का संग्रह किया है जो शब्द क्वचित् ही अन्यत्र उपलब्ध होते हैं।

संयोग की बात है कि याकोबी और पिशल- ये दोनों ही विद्वान् पश्चिम जर्मनी के कील विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रह चुके हैं जहाँ उन्होंने अपनी-अपनी रचनाएँ समाप्त कीं।

अर्न्स्ट लायमान (१८५९-१९३१) बेबर के शिष्य रहे हैं। उन्होंने जैन आगमों पर लिखित निर्युक्ति और चूर्ण साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन किया। यह साहित्य अब तक विद्वानों की दृष्टि से नहीं गुजरा है। वे स्ट्रॉसबर्ग में अध्यापन करते थे और यहाँ की लाइब्रेरी में उन्हें इन ग्रन्थों की पांडुलिपियों के अध्ययन करने का अवसर मिला। औपपातिकसूत्र का उन्होंने आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि लायमान द्वारा सम्पादित प्राकृत जैन आगम साहित्य पिशल के प्राकृत भाषाओं के अध्ययन में विशेष सहायक सिद्ध हुआ। १८९७ में उनका 'आवश्यक एरजेल्गोज' (आवश्यक स्टोरीज) प्रकाशित हुआ। पर इसके केवल चार फर्में ही छप सके। तत्पश्चात् वे वीवरसिष्ट डी आवश्यक लिटरेचर (सर्वे ऑफ दि आवश्यक लिटरेचर) में लगे गये जो १९३४ में हैम्बुर्ग से प्रकाशित हुआ।

वाल्टर शूब्रिंग जैनधर्म के एक प्रकाण्ड पण्डित हो गये हैं जो नॉरवे के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्टेनकोनो के चले जाने पर हैम्बुर्ग विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उन्होंने कल्प, निशीथ और व्यवहारसूत्र नामक छेदसूत्रों का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करने के अतिरिक्त महानिशीथसूत्र पर कार्य किया तथा आचारांगसूत्र का सम्पादन और ब्रेंट महावीर (वर्क आव महावीर) नाम से जर्मन अनुवाद प्रकाशित किया। उनका दूसरा महत्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ, डी लेहरे डेर जैनाज है जो दि डॉक्ट्रीन्स आव दी जैनाज के नाम से अंग्रेजी में १९३२ में दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में लेखक ने श्वेताम्बरजैन आगम ग्रन्थों के आधार से जैनधर्म सम्बन्धी मान्यताओं का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया। जर्मनी में किसी विद्वान् व्यक्ति के निधन के पश्चात् उसकी संक्षिप्त जीवनी तथा

उसकी रचनाओं की सूचना प्रकाशित करने की प्रथा है किन्तु महामना शूब्रिंग यह कह गये थे कि उनकी मृत्यु के बाद उनके सम्बन्ध में कुछ न लिखा जाय।

जे० इर्टल (१८७२-१९५५) भारतीय विद्या के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् हो गये हैं जो कथा साहित्य के विशेषज्ञ थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन पञ्चतन्त्र के अध्ययन के लिये समर्पित कर दिया। वे जैन कथा साहित्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए थे। "ऑन दी लिटरेचर आफ दी श्वेताम्बर जैनाज इन गुजरात" नामक अपनी लघु किन्तु अत्यन्त सारगर्भित रचना में उन्होंने जैन कथाओं की सराहना करते हुए लिखा है कि यदि जैन लेखक इस ओर प्रवृत्त न हुए होते तो भारत की अनेक कथायें विलुप्त हो जातीं।

हेल्मुथ फोन ग्लाजनेप (१८९१-१९६३) ट्युबिन्गन विश्वविद्यालय में धर्मों के इतिहास के प्रोफेसर रहे हैं। वे धर्म के पण्डित थे। याकोबी के प्रमुख शिष्यों में थे और उन्होंने लोकप्रिय शैली में जैनधर्म के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनके उद्धरण आज भी दिये जाते हैं। उन्होंने डेर जैनिसगुस (दि जैनिस्म) और डि लेहरे फोम कर्मन इन डेर फिलोसीफी जैनाज (दि डॉक्ट्रीन आव कर्म इन जैन फिलोसीफी) नामक महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत कीं। पहली पुस्तक 'जैनधर्म' के नामसे गुजराती में और दूसरी पुस्तक का अनुवाद अंग्रेजी तथा हिन्दी में प्रकाशित हुआ। उनकी इण्डिया, ऐज सीन वाई जर्मन थिंक्स (भारत, जर्मन विचारकों की दृष्टि में) नामक पुस्तक १९६० में प्रकाशित हुई।

ग्लाजनेप ने अनेक बार भारतयात्रा की और अनेक विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया। उनके दिल्ली आगमन पर जैन समाज ने उनका स्वागत किया। उनकी एक निजी लाइब्रेरी थी जो द्वितीय विश्व युद्ध में बम-वर्षा के कारण जलकर ध्वस्त हो गई।

लुडविग आल्सडोर्फ (१९०४-१९६८) जर्मनी के एक बहुश्रुत प्रतिभाशाली मनीषी थे, जिनका निधन अभी कुछ समय पूर्व २८ मार्च १९६८ को हुआ। उनके लिये भारतीय विद्या कोई सीमित विषय नहीं था। इसमें जैनधर्म, बौद्धधर्म, वेदविद्या, अशोकीय शिलालेख, मध्यकालीन भारतीय भाषायें, भारतीय साहित्य, भारतीय कला तथा आधुनिक भारतीय इतिहास आदि का भी समावेश था। आल्सडोर्फ इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा के अध्यापक रह चुके हैं। यहाँ रहते हुये उन्होंने संस्कृत के एक गुरुजी से संस्कृत का अध्ययन किया था। उसके बाद

अनेक बार उन्हें भारतयात्रा का अवसर मिला। जितनी बार वे भारत आये, उतनी ही बार अपने ज्ञान में वृद्धि करने के लिए कुछ न कुछ समेट कर अवश्य ले गये। अनेक प्रसंग ऐसे उपस्थित हुये, जबकि पंडित लोग अनार्य समझकर, उनके मंदिर प्रवेश पर रोक लगाने की कोशिश करते। लेकिन वे झट से संस्कृत का कोई श्लोक सुनाकर अपना आर्यत्व सिद्ध करने से न चूकते। आल्सडोर्फ ने अपने राजस्थान, जैसलमेर आदि की यात्राओं के रोचक वृत्तांत प्रकाशित किये हैं।

आल्सडोर्फ ने विद्यार्थी अवस्था में जर्मन विश्व-विद्यालयों में भारतीय विद्या, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, अरबी, फारसी, आदि का अध्ययन किया। वे लायमान के सम्पर्क में आये और याकोबी से उन्होंने जैनधर्म का अध्ययन करने की अभूतपूर्व प्रेरणा प्राप्त की। यह याकोबी की प्रेरणा का ही फल था कि वे पुष्पदन्त के महापुराण नामक अपभ्रंश ग्रन्थ पर काम करने के लिए प्रवृत्त हुए जो विस्तृत भूमिका आदि के साथ १९३७ में जर्मन में प्रकाशित हुआ। आल्सडोर्फ, शूब्रिंग को अपना गुरु मानते थे। जब तक वे जीवित रहे, उनके गुरु का चित्र उनके कक्ष की शोभा बढ़ाता रहा। उन्होंने सोमप्रभसूरि के कुमारवालपडिबोह नामक अपभ्रंश ग्रंथ पर शोध प्रबन्ध लिख कर पी-एच०डी० प्राप्त की।

१९५० में शूब्रिंग का निधन हो जाने पर वे हैम्बुर्ग विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये और सेवानिवृत्त होने के बाद भी अन्तिम समय तक कोई न कोई शोधकार्य करते रहे।

अपने जर्मनी आवास काल में इन पंक्तियों के लेखक को आल्सडोर्फ से भेंट करने का अनेक बार अवसर मिला और हर बार उनकी अलौकिक प्रतिभा की छाप मन पर पड़ी। किसी भी विषय पर उनसे चर्चा चलाइये, चलते फिरते एक विश्वकोश की भाँति उनका ज्ञान प्रतीत होता रहा। उन्होंने भी संघदासगणि कृत वसुदेवहिंडि जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ की ओर विश्व के विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया और इस बात की बड़े जोर से स्थापना की कि यह अभूतपूर्व रचना पैशाची प्राकृत में लिखित गुणादय की नष्ट हुई बड्ढक कहा (बृहत्कथा) का जैन रूपान्तर है। उनकी वसुदेवहिंडि की निजी प्रति देखने का मुझे अवसर मिला है जो पाठान्तरों एवं जगह-जगह अंकित किए हुए नोट्स से रंगी पड़ी थी। उनका कहना था कि दुर्भाग्य से इस ग्रन्थ की अन्य कोई पांडुलिपि मिलना तो अब दुर्लभ है

किन्तु अनेक स्थलों से प्रकाशित ग्रन्थ के फुटनोट्स में दिये हुए पाठान्तरों की सहायता से अधिक सुचारु रूप से सम्पादित किया जाना सम्भव है। अपने लेखों और निबन्धों में वे बड़े से बड़े विद्वान् की भी समुचित आलोचना करने से नहीं हिचकिचाते। उन्होंने अवसर आने पर याकोबी, पिशाल, ऐडगर्टन आदि जर्मनी के सुविख्यात् विद्वानों के कथन को अनुपयुक्त ठहराया।

१९७४ में क्लाइने श्रिफ्टेन (लघुनिबन्ध) नामक ७६२ पृष्ठों का एक ग्रन्थ ग्लाजनेप फाउण्डेशन की ओर से प्रकाशित हुआ है। जिसमें आल्सडोर्फ के लेखों, भाषणों एवं समीक्षा टिप्पणियों संग्रह है। इसमें दृष्टिवादसूत्र की विषय-सूची (मूलतः यह स्वर्गीय मुनि जिनविजयजी के अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए लिखा गया था। यह जर्मन स्कालर्स आफ इण्डिया, जिल्द १ पृ० १-५ में भी प्रकाशित है) के सम्बन्ध के एक महत्व पूर्ण लेख संग्रहीत है। मूडबिद्री से प्राप्त हुए षट्खंडागम साहित्य के सम्बन्ध में स्वर्गीय डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये ने उल्लेख किया था कि कर्मसिद्धान्त की गूढ़ता के कारण पूर्व ग्रन्थों का पठन-पाठन बहुत समय तक अवच्छिन्न रहा जिससे वे दुष्प्राप्य हो गये। आल्सडोर्फ ने इस कथन से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए प्रतिपादित किया कि यह बात तो श्वेताम्बरीय कर्मग्रन्थों के सम्बन्ध में भी की जा सकती है। फिर भी उनका अध्ययन-अध्यापन क्यों जारी रहा और वे क्यों दुष्प्राप्य नहीं हुए। इस संग्रह के एक अन्य महत्वपूर्ण निबन्ध में आल्सडोर्फ ने 'वैतादय', शब्दकी व्युत्पत्ति वेदार्थ से प्रतिपादित की है : वे (य) अड्ढ= वेइअड्ढ=वेदियड्ढ= वेदार्थ। इसे उनकी विषयकी पकड़ और सूझ-बूझ के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि आल्सडोर्फ की बात से कोई सहमत हो या नहीं, वे अपने कथन का सचोट और स-प्रमाण समर्थन करने में सक्षम थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कितने औरियंटियल रिसर्च पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध थे और इनमें उन्होंने विविध विषयों पर लिखे हुए कितने ही महत्वपूर्ण ग्रन्थों की समीक्षायें प्रकाशित की थीं। 'क्रिटिकल पालि डिक्शनरी' के वे प्रमुख सम्पादक थे जिसका प्रारम्भ सुप्रसिद्ध वि. ट्रेकनेर के सम्पादकत्व में हुआ था।

विदेशी विद्वानों द्वारा भारतीय दर्शन एवं धर्म सम्बन्धी अभिमतों को हम इतना अधिक महत्व क्यों देते आये है? वे यथासम्भव तटस्थ रहकर किसी विषय का वस्तुगत

विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं। अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं, विचारों एवं विश्वासों का उसमें मिश्रण नहीं करते हैं।

संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश की रचनाओं का अध्ययन करने के पूर्व वे इन भाषाओं के व्याकरण, कोश, आदि का ठोस ज्ञान प्राप्त करते हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान उनके अध्ययन में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यूरोप की आधुनिक भाषाओं में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, डच आदि का ज्ञान उनके शोधकार्य में सहायक होता है। जैनधर्म का अध्ययन करनेवालों के लिए जर्मन भाषा का ज्ञान आवश्यक है। इस भाषा में कितने ही महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ एवं लेख ऐसे हैं उदाहरणार्थ, जैन अध्ययन के लिए जैनधर्म और दर्शन का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं, वैदिक धर्म, बौद्धधर्म तथा यूरोपीय भाषाओं में हुए शोध का ज्ञान भी आवश्यक है। तुलना के लिए बौद्धधर्म का अध्ययन तो आवश्यक है ही। इस अध्ययन को व्यवस्थित करने के लिए चुने हुए जैन ग्रन्थों का चुने हुए जैन विद्वानों द्वारा

आधुनिक पद्धति से संपादन किये जाने की आवश्यकता है। प्रकाशित ग्रन्थों की आलोचनात्मक निर्भीक समीक्षा की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में जैनों के सभी सम्प्रदायों के विद्वानों द्वारा तैयार की गयी सम्मिलित योजना कार्यकारी हो सकती है। शोध कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए पुस्तकालय अथवा पुस्तकालयों की आवश्यकता है जहाँ शोध सम्बन्धी हर प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। ये भारत के कुछ केन्द्रीय स्थानों में स्थापित किये जाने चाहिये तथा विद्यमान सुविधाओं का आधुनिकीकरण किया जाय। अन्त में, एक महत्त्वपूर्ण बात और कहना चाहता हूँ। वह यह है कि यथार्थता से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया जाये। विषयों का चुनाव इस प्रकार किया जाय जिससे शोध छात्र प्रोत्साहित हों और आगे चलकर दिशा भी ग्रहण कर सकें एवं जैन विद्याओं को प्रकाशित कर सकें।

‘पं. कैलाश चन्द्र जी शास्त्री
अभिनन्दन ग्रन्थ’ से साभार

आपके पत्र

आपके सम्पादकत्व में जिनभाषित पत्रिका मेरी दृष्टि में, आजकल जितनी धार्मिक-पत्रिकाएँ निकल रही हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है।

आपका सम्पादकीय लेख तो हर पत्रिका में एक अद्भुत विद्वत्ता एवं अनुभव को लिए हुए होता है। यह समयानुकूल, बहुत सारगर्भित तथा स्पष्टवादिता का द्योतक होता है।

इसी प्रकार श्री रतनलाल जी साहब बैनाड़ा जी का ‘जिज्ञासा-समाधान’ नामक स्तम्भ तो बहुत ही स्पष्ट एवं भ्रांतियों का सच्चा समाधान-प्रदायक होता है। उसमें उनके समाधान व उत्तर देने की शैली जो कि स्वयं की ओर से न देकर, पूर्व-आचार्यों द्वारा और प्रसंग व शास्त्र व श्लोक-संख्या, पेज संख्या आदि देकर जो दी जाती है, बहुत ही प्रभावशाली एवं अकाट्य होती है। यह उनकी सादगी, सरलता व उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता एवं स्वाध्यायशीलता का द्योतक है। श्रावक के षड् आवश्यक कार्यों में जो स्वाध्याय को परम-तप की संज्ञा दी जाती है, मालूम होता है कि वह शायद इसी प्रकार के स्वाध्याय की संज्ञा हो सकती है, न कि केवल पढ़ना मात्र।

सितम्बर 2007 की पत्रिका में ‘पर्युषण के दिव्य आकाश पर प्रदूषण के बादल’ नाम का जो लेख श्रद्धेय भैयाजी श्री त्रिलोक जी ने लिखा है, वह तो बहुत ही सार्थक, समयानुकूल एवं अक्षरशः सत्य है। वह लेख तो विद्वानों, प्रवचनकारों व पूज्य साधु-संतों के लिए भी विशेष ध्यान देने लायक एवं अनुकरणीय भी है। यदि सभी विद्वान्, लेखक व साधुगण धर्म की आड़ में फैल रही कुरीतियों व कुसंस्कारों को रोकने का इसी प्रकार का प्रयास करें, तो मैं समझता हूँ कम से कम 50-55 प्रतिशत तो कुसंस्कारों को कम किया जा सकता है। आशा है आप इस ओर अपना व विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने की कृपा करेंगे तथा मुझ जैसे अज्ञानी ने जो आप जैसे महान्-विचारक, चिन्तक विद्वान् को सुझाव देने की धृष्टता की है, उसके लिए क्षमा करेंगे।

बाबूलाल बरोदिया, अशोकनगर (म.प्र.)

ख्यातिपूजालाभ के लिए मंत्रतंत्रादि का प्रयोग मुनिधर्म नहीं।

ब्र. अमरचन्द्र जैन

जिनभाषित की एक-एक प्रति संग्रहणीय है। आजकल नकली की कदर असली से ज्यादा हो रही है, 'वीतराग' के ऊपर राग हावी हो रहा है, उसे ही जैनी अब धर्म मानने लगे हैं।

लौकिकता की दौड़ में जहाँ इन्द्रिय सुखों के साधन, सम्पत्ति का विस्तार-आपत्ति का निस्तार, यश और सांसारिक भोगों में निष्कण्टक मार्ग, जिन माध्यमों से मिले वही धर्म की परिभाषा हो गई है। अतः सरागीदेवों को पूजते हैं।

आपके द्वारा प्रकाशित लेखों में शासन देवी-देवताओं के संबंध में, जिज्ञासा-समाधान में, प्रश्नों के उत्तर में जो भी विश्लेषण किया जाता है, लगता है आम श्रावक पर उसका प्रभाव, उन तथ्यों का जीवन में प्रयोग, प्रवेश संभव नहीं हो पा रहा है तथा शासन देवी-देवताओं की पूज्यता व्यापक हो रही है।

आचार से भ्रष्ट साधुओं की संख्या निरंतर बढ़ रही है और आये दिन उनके अशोभनीय, अकरणीय जीवनचर्या तथा अन्य प्रकरण प्रकाश में आते हैं। 'उपगूहन' की संज्ञा देकर एक विशेष वर्ग उन्हें संरक्षण या कहेँ प्रोत्साहन भी देते हैं, पर 'स्थितिकरण' पर उनका ध्यान नहीं है। ऐसा साधु-वर्ग शासन देवी-देवताओं की मान्यता/पूज्यता की समझाइस के कारण त्रस्त संसारी, लोभी, परिग्रह संग्रही, श्रावकों को सांसारिक सुख, वैभव का सपना दिखाकर यंत्र-मंत्र-तंत्र तथा अन्य उपकरणों जैसे कलश स्थापना, माला, यंत्र, गंडा, ताबीज आदि से उनका विश्वास जीतकर अपनी दुकानदारी चलाकर पूज्यता तथा अर्थ का अर्जन खुले आम कर रहे हैं। इसमें कोई रोक नहीं। चूँकि समाज का एक वर्ग उन्हें उनके कार्यों पर कोई आपत्ति या अयोग्य नहीं मानता तथा उनके द्वारा उन्हें अर्थ लाभ होता है अतः शासन देवी-देवताओं के एजेंट कहे जाने वाले ये भ्रष्ट साधु संख्या में तथा करतब में नित नई विधि जोड़ते देखे गये हैं।

उसका एक उदाहरण देता हूँ, आप चौकिये नहीं। चि. धर्मेन्द्र अपनी माँ के इलाज हेतु बम्बई गये। बोरिवली में मुनिसंघ का दर्शन करने गये। दर्शन के पश्चात् बालक ने मुनिराज से पूछा कि इस वाशिंग मशीन का आपको क्या उपयोग है? बालक ने समझा महाराज नग्न हैं, अतः कपड़े धोने की मशीन का उनके पास होने से सहज जिज्ञासा

की। मुनिराज ने उत्तर दिया- आर्यिका माताओं की साड़ियाँ कौन धोयेगा, तू धोयेगा? बालक की समझ में आया कि महाराज के परिवार में जो महिलाएँ (आर्यिकाएँ) हैं, उनके वस्त्र धोने के लिए महाराज ने मशीन रखी है। यह घटना सुनकर आश्चर्य हुआ एवं आज की नई पीढ़ी में इन बातों को सहज में लिया जाने लगा है।

मुनिराजों की यह अवस्था और व्यवस्था ही वीतराग मार्ग है?

आज सामान्य श्रावक, अन्य परिग्रह सहित नग्नवंश में इन्हीं को गुरु की संज्ञा देकर पूजते हैं और मनचाहा लौकिक लाभ पाने की कामना कर प्रसन्न होकर दानादि देकर तथा उनकी सेवाएँ करके धर्म पाल रहे हैं। श्रावकों का यह वर्ग वीतरागी साधुओं के भी सान्निध्य में आता उन्हें पूजता तथा आहारादि और दान देकर अपने को पुण्यशाली समझ रहा है।

मेरे दिल्ली के कई परिवारों से कुण्डलपुर में रहने के कारण संपर्क हैं। उनका कहना है भाई सा. हम लोग गृहस्थ हैं संसार में रहते हैं, जीना है, मौज शौक करना है, विपत्तियाँ टालना है, संपत्ति कमाना है, तो जो गुरु हमें ये सब देते हैं या दिलाते हैं वे हमारे पूज्य हैं। सो हम संसार में सुख-साधन प्राप्त करते हैं तथा वहाँ भी हम आकर आचार्यश्री के संघ में आहारादि पूजा-विधान करते हैं तथा क्षेत्रों को दान देकर पुण्य कमा रहे हैं। अतः हम लौकिक और पारलौकिक जीवन को सुधारने तथा भोगने का उत्तम साधना बना रहे हैं। इसमें क्या हानि है?

आप विचार करें, चिंतन करें हम कहाँ जा रहे हैं? ऐसे श्रावकों की संख्या भी बढ़ रही है और कई प्रसंग है, प्रकाशित भी हैं, जहाँ आगम की आड़ में/नाम से लिखे ग्रन्थ आचार्यों के नाम से लिखे गये और उनका प्रचार भी सांसारिक सुख-साता लाभ के लिए श्रावकों को लुभा रहा है और तथाकथित साधुओं की सेवा तथा जिनवाणी की आज्ञा के पालन का पाठ पढ़ाया जा रहा है।

'दिगम्बर जैन ज्योति' मासिक पत्रिका जयपुर से प्रकाशित होती है। 13 जुलाई 2007 के अंक के 7 वें पेज पर समाचार छपा है-

"वे मुनि नहीं मुनीम हैं-" बालाचार्य

जिनवाणी में 11 अंग 14 पूर्व बतलाए हैं, जिनमें वेदानुवाद पूर्व भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह विद्यानुवादपूर्व गणाधिपति वृषभदेव गणधर महाराज द्वारा विवेचित किया गया है। जिसमें यन्त्र, मन्त्र औषधि आदि का महत्त्वपूर्ण विवेचन है और यह जिनशासन की प्रभावना हेतु दि. जैन साधुओं द्वारा अनुकरणीय है। कथित वेज्ञजनों द्वारा यह सुना जाता है कि साधुओं को यह कार्य नहीं करना चाहिए। लेकिन विचारणीय यह है कि साधुओं को यह नहीं करना चाहिए? आगमानुसार यह पाया गया है कि जो साधु यंत्र, तंत्र, मंत्र आदि द्वारा अपनी जीविका को चलाते हैं उनके लिए यह कार्य सर्वथा निषेध है। वे मुनि नहीं मुनीम हैं। परंतु जो संत दि. जैन जिन शासन की प्रभावना हेतु परोपकार की भावना सहित और अन्य मत मिथ्यात्व में जाने से छुटाने हेतु निःस्वार्थ भावना सहित अगर यह कार्य करते हैं तो कहीं पर भी आगम की निषेधाज्ञा लागू नहीं होती। उपर्युक्त बालाचार्य के कथन से स्पष्ट है कि आजकल साधु मंत्र-तंत्र-यंत्र से जीविका चलाते हैं, जो नहीं चलाते हैं, परोपकार करते हैं तथा इन कार्यों में आगम की निषेधाज्ञा लागू नहीं होती।

‘जिनभाषित’ जुलाई 2005 के पेज 11 पर प्रा. सौ. जीलावती के एक लेख ‘यह मंत्र तंत्र विज्ञान हमें कहाँ ले जा रहा है?’ पढ़ने से तो ऐसा प्रतीत हुआ कि आ. गुणनन्दीकृत 28 कथित ग्रन्थों के डुप्लीकेट विद्यानुशासन तथा यंत्र-मंत्र आराधना, ज्वालामाकनी कल्प, सरस्वती कल्प आदि ग्रन्थ हैं। इनमें रोगमंत्र, रक्षा मंत्र, विद्या मंत्र, प्रेत मंत्र, कार्य सिद्धि मंत्र आदि का समावेश है।

उक्त आचार्य ने दो शब्द की प्रस्तावना अनुसार ‘मंत्र

विज्ञान अनादि निधन है।’

इन कथित आचार्य के अनुसार (जिन्हें आगमप्रणीत कहा गया है) मंत्र साधना द्वारा देवी देवता अपने वश में हो जाते हैं। मंत्र सिद्धि प्राप्त साधक को संसार का समस्त वैभव सुलभ हो जाता है। इस भौतिकता प्रधान युग में मानव सुविधा चाहता है और चमत्कार भी।

इनमें रक्षा मंत्र (शाकिनी, डाकिनी, भेरुजी, गोरखनाथ, कालका आदि के नाम आये हैं।) में मांस खाने की बात भी कही गयी है। क्षेत्रवाद के मंत्रों में-वंदीखाने से छूटे-स्त्री आकर्षण करे।

वचन सिद्धि, झगड़ों से विजय पाने, धन का क्रय विक्रय लाभ, वचन चातुर्य, कर्ण पिशाचिनी विद्या, भूत प्रेत भगाने का मंत्र, चक्षुरोग निवारण कार्य सिद्धि, वस्तु बढ़ोत्तरी, पैसे उड़ाने का मंत्र तथा (पृष्ठ 34) इस मंत्र का सवा लाख जप करने से माँ तारादेवी नित्य सिरहाने दो तोला सोना रख देती है आदि।

साधारण जैन श्रावक आज इन्हीं कथित साधुओं द्वारा कथित आचार्यों के ग्रन्थ के माध्यम से वीतरागता के लोप में लगे हुए हैं। यह संसार को बढ़ाने वाला, पाप प्रवृत्ति में रचाने-पचाने वाला वीतराग मार्ग से विरुद्ध है, अकरणीय है। अतः श्रावक शासन देवी-देवताओं, आचार भ्रष्ट साधुओं तथा कथित उपर्युक्त आचार्यकृत ग्रन्थों से विरत रहें तथा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर अटल श्रद्धान रख मनुष्य जीवन सफल बनायें।

श्री दिगम्बर जैन महावीर उदासीन आश्रम
कुंडलपुर (म.प्र.)

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा ।

क्रोधश्च हठवादश्च परवाक्येष्वनादरः ॥

घमण्ड करना, खोटे वचन कहना, क्रोध करना, हठ करना और दूसरे की बातों का निरादर करना, ये पाँच मूर्ख के चिह्न हैं।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।

शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥

आँखों से देखकर पैर रखना चाहिये, वस्त्र से छानकर जल पीना चाहिये, शास्त्र के अनुसार वचन बोलना चाहिये और मन से सोचविचारकर आचरण करना चाहिये।

स्व० पं० नाथूलाल जी शास्त्री

वे अंतिम समय तक धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के लिये मार्गदर्शन करते रहे

माणिकचंद जैन पाटनी

गत शताब्दी के प्रत्यक्ष दृष्टा एवं दिगम्बरजैन समाज इन्दौर के, अपनी सरलता सादगी एवं शुद्ध सात्विक आचार-विचार से श्रावक कुल एवं धर्म को सुवासित करने वाले, धर्मनिष्ठ, प्रकाण्ड शीर्षस्थ विद्वान्, संहितासूरी, श्रुतयोगी, 98 वर्षीय पं० नाथूलालजी शास्त्री का निधन 9 सितम्बर 2007 रविवार को मध्याह्न 12 बजकर 15 मिनट पर हो गया।

उनके द्वारा स्वेच्छा से मृत्युउपरांत नेत्रदान किया गया। नेत्रदान का आवहरण प्रसिद्ध नेत्र विशेषज्ञ डॉ० किशन वर्मा ने स्वयं पं० नाथूलाल जी शास्त्री की जीवन-शैली से प्रभावित होकर किया।

पिता सुन्दरलाल जी बज एवं मातुश्री गेंदाबाई के यहाँ 1 नवम्बर 1911 को जन्मे पं० नाथूलाल जी ने जैन सिद्धान्त, न्याय, साहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्य रत्न की शिक्षा प्राप्त की एवं सर हुकुमचंद संस्कृत महाविद्यालय जवरीबाग से जुड़े रहे। आपके एक पुत्र एवं छः पुत्रियाँ (वर्तमान में पांच पुत्रियाँ, दो पौत्रियाँ सभी विवाहित) हैं। आपकी धर्म पत्नी स्व० श्रीमती सुशीलाबाई जैन (पूर्व अध्यापिका) (स्वर्गवास दिनांक 19.9.1995) ने भी शिक्षा में विशारद किया एवं अध्यापिका रही। आपके पुत्र जिनेन्द्रकुमार जी जैन व पुत्रवधु ताराजी जैन हैं।

इन्दौर की दिगम्बरजैन महासमिति व नेमीनगर जैन कॉलोनी के विकास में संस्थापक सदस्य पं० नाथूलालजी शास्त्री की अहम् भूमिका के लिये दोनों संस्थाएँ उनके उपकार को कभी भी विस्मृत नहीं कर पायेंगी। 11 जनवरी 1987 को आयोजित दिगम्बरजैन महासमिति की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक के अवसर पर उनके सम्मानार्थ आम सभा में पंडितजी ने बालक-बालिकाओं के संस्कार हेतु धार्मिक पाठशालाएँ प्रारंभ करने के लिए प्रस्ताव किया। तथा प्रत्येक पाठशाला को मासिक खर्च देने का अनुरोध किया। पंडितजी के इस प्रस्ताव पर कई ने अपना समर्थन देते हुए मासिक व्यय के लिये राशि घोषित की। पंडितजी ने मेरे व अन्य साथियों के साथ इन्दौर के सभी क्षेत्र में घूमकर पाठशालाएँ प्रारंभ की। इसी प्रकार सन् 1986 में इन्दौर दिगम्बर जैन समाज की जनगणना करने के लिये

प्रेरणा देकर उन्होंने अन्य सभी को साथ में लेकर इसे अंजाम दिया। दिगम्बर जैन युवा मेला भी आपके परामर्श का सुफल है। महासमिति के प्रति सभी कार्यकर्ताओं में उनका सदैव लगाव रहा है। 14 जनवरी 2007 को महासमिति मध्यांचल महाकुंभ के अवसर पर भी उन्होंने एक लेख 'महासमिति मध्यांचल और उसके अध्यक्ष' भेजा जो उनके लगाव की पुष्टी करता है। इसी प्रकार समाजरत्न श्री माणिकचंद पाटनी अभिनंदन ग्रंथ में भी श्री पाटनी को आशीर्वचन के रूप में अपना संदेश देना नहीं भूले। उनके आशीर्वचन एवं लगाव से महासमिति सदैव प्रगति के पथ पर अग्रसर होती रहेगी।

नेमीनगर के विकास की शृंखला में से प्रथम जिन-मंदिर के अभाव में आई निवास की समस्या का उन्होंने चैत्यालय का निर्माण करवाकर भगवान् चंद्रप्रभु की मूर्ति विराजमान कर समाधान किया। पश्चात् ही कॉलोनी का विकास हुआ। प्रो० जमनालालजी जैन ने नई वैदी बनवाकर भगवान् शांतिनाथ की प्रतिमा विराजमान की। कलश चढ़ाने के लिये विरोध को उन्होंने कलश के आकार में संशोधन कर समाधान किया जिसे सभी ने स्वीकार किया। निर्वाण लाडू को पूजा के मध्य चढ़ाना या निर्वाणकाण्ड बोलकर बाद में चढ़ाने की समस्या का भी उन्होंने समाधान किया, कि पहले पूजन पूरी बोलना चाहिये तथा पश्चात् निर्वाणकाण्ड बोलकर लाडू चढ़ाना चाहिये। नेमीविद्या मंदिर की स्थापना में उनका परामर्श अति महत्वपूर्ण था जिस कारण इसकी स्थापना संभव हो पाई। संस्थाओं के विकास में उनके योगदान हमेशा उनकी यशोगाथा स्मरण कराते रहेंगे।

सन् 1930 से जैन प्रतिष्ठा विधि का प्रचार-प्रसार आपने निःस्वार्थ भाव से किया। आपके प्रतिष्ठाचार्यत्व में निःस्वार्थ भाव से बिना कोई राशि लिये वैदी प्रतिष्ठाएँ धार्मिक शुद्धता के साथ देश के अनेक हिस्सों में हुई। सन् 1961 में सम्मेदशिखर तेरापंथी कोठी में मान स्तंभ प्रतिष्ठा, सन् 1964 में सम्मेदशिखर नंदीश्वर बावन चैत्यालय बिंब प्रतिष्ठा, 1958 में सुखदेव आश्रम लाडनू पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, इसके अतिरिक्त दाहोड़, कुशलगढ, ऊन (पावागिरी), जावरा, मुम्बई (दादर बोरिवली मुंबादेवी), भीलवाड़ा

पिड़ावा, सोनगढ़, पोरबंदर, बनेड़िया, जामनगर, लौहारदा, शिवपुरी, बड़ौदा, अहमदाबाद, तालौद, गोम्मटगिरी इन्दौर, मोदीनगर दिल्ली, नेरोली, अहिंसा स्थल, सागर आदि स्थानों पर लगभग पचास से अधिक बिंब प्रतिष्ठाएँ आपके द्वारा सम्पन्न हुईं।

राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के उन्नयन में भी आपका सराहनीय योगदान रहा है। सन् 1942 के आंदोलन में आपने सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में भूमिका निभाई। आप तभी से शुद्ध खादी-निर्मित वस्तुओं को ही पहनते रहे हैं। ग्रीष्मावकाश के दिनों में आप घर-घर जाकर हिन्दी साहित्य की पुस्तकें बेचते थे। वीर विद्यालय के वाचनालय में मंत्री श्री माणिकचंद पाटनी के काल में साहित्य सम्मेलन की परीक्षा में सम्मिलित होने वाले छात्रों का निःशुल्क अध्यापन भी करते थे। नैतिक शिक्षा के सभी भागों को क्रमानुसार उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है।

आपका आगम ज्ञान इतना विशाल था कि श्रमण संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट उपासक भी आपसे तत्व चर्चा कर आनन्दित/प्रभावित होते थे और इन्हें प्रमाणिक मानकर सम्मान देते थे। देश के अनेक जैन मुनियों व आर्यिकाओं को उन्होंने धार्मिक विद्या दी। आचार्य विद्यासागर जी महाराज भी उनसे कई मामलों में परामर्श करते थे और उस अनुसार निर्णय भी लेते थे। देवगढ़ में विराजित अनेक मूर्तियों के निरीक्षण के दौरान वे पंडित जी से उनकी प्रमाणिकता की चर्चा करना आवश्यक समझते थे। इसी प्रकार नेमावर सिद्धक्षेत्र के बारे में उन्होंने पंडितजी से पूरी जानकारी एकत्रित कर उसके निर्वाण क्षेत्र की पुष्टि चाही। इस पर पंडितजी ने इसे निर्वाण क्षेत्र प्रमाणित किया और तत्पश्चात् वहाँ आचार्य श्री की प्रेरणा से निर्माण प्रारंभ हुआ। सामाजिक कार्यों में भी आपकी गहरी रुची एवं पकड़ थी। समाज में एकता बनी रहे और संगठन मजबूत बने यह आपका मूल ध्येय रहा।

23 फरवरी 1942 से अक्टूबर 1949 तक दिगम्बर जैन हितेच्छु पाक्षिक पत्र के प्रधान संपादक व जुलाई 1971 से 1984 तक सन्मतिवाणी के प्रधान संपादक रहे। वर्तमान में सन्मतिवाणी, परिणय प्रतीक के परामर्शदाता थे। आपके द्वारा रचित हिन्दी जैनसाहित्य महिलाओं के प्रति जैन विवाह संस्कार, वीरनिर्वाणोत्सव, विश्वधर्म तीर्थयात्रा (आठ भाग), अभिषेक पाठ, पावागिरी इतिहास, नैतिक शिक्षा 1-7 भाग

आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जैन संस्कार विधि के पाँच संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। अभी हाल ही में लिखित पुस्तक 'आत्मा से परमात्मा का विज्ञान' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

आपको सन् 1974 में वीरनिर्वाण भारती द्वारा देहली में सिद्धांताचार्य की उपाधि से उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती द्वारा सम्मानित किया गया। दिगम्बरजैन समाज इंदौर द्वारा 1978 में सम्मानित किया गया और तीर्थंकर पत्रिका में भी इन्दौर ने सन् 1978 में पं. नाथूलाल जी शास्त्री विशेषांक प्रकाशित किया।

आपको हिन्दी जैनसाहित्य लेखन के लिये सन् 1951 में अखिल भारतीय दिगम्बरजैन महासभा ने पुरस्कृत किया, आपकी कृति प्रतिष्ठा प्रदीप को 6 जून 1993 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया। फरवरी 1995 में आपको दिगम्बरजैन जनमंगल प्रतिष्ठान सोलापुर द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार दिल्ली में दिया जाकर पूज्य आचार्य श्री विद्यानंदजी के सान्निध्य में आपका अभिनंदन एवं श्रुतयोगी की उपाधि से सम्मानित किया गया।

सन् 1981 में श्रवणबेलगोला में तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानीजैलसिंह जी द्वारा भट्टारक चारूकीर्ति स्वामीजी के सान्निध्य में सम्मानित किया गया।

सन् 1974 में इन्दौर जैन समाज द्वारा तत्कालीन केन्द्रीय उद्योगमंत्री डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्मानित किया गया।

दिनांक 23.2.1998 को उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज के सान्निध्य में श्रुतसंवर्धन पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

सन् 1952 में मोदी नगर, दिल्ली में प्रतिष्ठा दिवाकर की उपाधि से सम्मानित किये गये। इसके साथ ही आपको अनेक उपाधियाँ प्राप्त हैं जिनमें प्रमुख प्रतिष्ठा दिवाकर, संहितासूरी, 'सिद्धांत महोदधि' श्रुतयोगी, सिद्धांताचार्य आदि हैं।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का प्रथम पुरस्कार राष्ट्रीय स्तर पर आपको प्राप्त हुआ। श्रमण संस्कृति विद्यावर्धन ट्रस्ट, जिसके माध्यम से प्रतिष्ठाचार्य एवं लौकिक मांगलिक कार्यों के विधि-विधान हेतु विद्वानों को शिक्षण-प्रशिक्षण दिया जाता है, के आप संस्थापक हैं। आपने दो शिविर में चालीस विद्वान् तैयार किये हैं आप दिगम्बरजैन समाज

इन्दौर (शहर की सामाजिक संसद) के संरक्षक है, दिगम्बर-जैन महासमिति मध्यांचल व दिगम्बरजैन मैरिज ब्यूरो के प्रमुख, दिगम्बरजैन महिला संगठन इन्दौर के परामर्शदाता एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर की कार्य परिषद् के उपाध्यक्ष हैं। लगभग 30 वर्षों तक महासभा परीक्षा बोर्ड का संचालन एवं महासभा के सहायक महामंत्री तथा वर्तमान में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परीक्षा संस्था के निदेशक हैं।

सन् 1934 से जैन तिथि दर्पण इन्दौर का संपादन अनवरत चला आ रहा है। वर्तमान में इसके प्रकाशन की स्थायी व्यवस्था हेतु 'जैन तिथि दर्पण' प्रकाशन समिति का गठन कर दिया गया है जिसके संपादक पं० विजयकुमार जैन, 'शास्त्री' गोम्मटगिरि, प्रबंध संपादक श्री गुलाबचंद बाकलीवाल, सदस्य श्री भानुकुमार जैन व श्री कमलचंद सेठी है। आप वीर निर्वाण प्रकाशन समिति, जैन सहकारी पेढी (पूर्व अध्यक्ष, वर्तमान में परामर्शदाता), वर्धमान विश्रांतिगृह, विद्यार्थी सहायता कोष, श्रमण संस्कृति विद्यावर्धन ट्रस्ट के अध्यक्ष एवं भगवान् बाहुबली गोम्मटगिरि के उपाध्यक्ष तथा धन्नालाल रतनलाल काला ट्रस्ट एवं श्री फूलचंद गोधा प्रकाशन समिति के मंत्री, दिगम्बरजैन समाज इन्दौर के संरक्षक है। सन् 1946 में मथुरा तथा सन् 1947

में वर्णी भवन सागर में शिविर आयोजित कर प्रशिक्षणार्थियों तथा 1 जून 1993 से श्रमण संस्कृति विद्यावर्धन ट्रस्ट में प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन कर लगभग पचास प्रतिष्ठाचार्य तैयार किए।

उल्लेखनीय विशेषाहं-

पं० श्री नाथूलालजी शास्त्री बहुआयामी व्यक्तित्व, जैन सिद्धान्त, दर्शन, न्याय, साहित्य, ज्योतिष एवं आयुर्वेद आदि के प्रकांड विद्वान्, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, धार्मिक विधि-विधान (क्रियाकाण्ड) के निष्णात् मनिषी, परम्परा अनुसार आगम विरुद्ध क्रियाकाण्डों को बंद कर आगमोक्त प्रतिष्ठा विधि के सम्पूर्ण जैन समाज एवं विद्वत् वर्ग के कुशल सम्पादक एवं मार्गदर्शक थे। समन्वयवादी दृष्टिकोण उनके प्रवचन, भाषण, लेखन में स्पष्टरूप से झलकता था। इसी विशेषता के कारण वे समाज के समस्त वर्गों में आदर के पात्र थे। इन्होंने केवल अध्यात्म पर प्रवचन, भाषण, अध्ययन, अध्यापन, लेखन ही नहीं किया, अपितु इसे अपनी जीवन शैली बनाया। यह उनकी जीवन शैली से परिभाषित होता है। आध्यात्मिक भाषा में इसे 'जीने की कला' कहते हैं।

प्रधान सम्पादक - परिणय प्रतीक

श्री गणेशवर्णी स्मृति पुरस्कार-2007 प्राचार्य पं० निहालचंद जैन को

अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् द्वारा प्रतिवर्ष श्री वर्णी स्मृति एवं गुरुगोपालदास बरैय्या स्मृति पुरस्कार प्रदत्त किया जाता है।

विगत 40 वर्षों से जैनधर्म/दर्शन की प्रभावना करने तथा उसे वैज्ञानिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करने के लिए, जैन जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् एवं उपाध्यक्ष अ.भा.दि. जैन शास्त्र परिषद् प्राचार्य निहालचंद जैन, बीना (म.प्र.) को इस वर्ष का उक्त पुरस्कार एवं डॉ० लालचंद जैन आरा को गुरु गोपालदास बरैय्या स्मृति पुरस्कार प्रदत्त किया गया। उक्त दोनों पुरस्कार परम पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य एवं मंगल आशीर्वाद पूर्वक शास्त्रपरिषद् एवं विद्वत्परिषद् के संयुक्त अधिवेशन, खान्दू कालोनी बाँसवाड़ा (राज०) में 28 अक्टूबर 07 को प्रदान किये गये। श्री मूलाचार अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी में आगत विद्वानों ने दोनों विद्वानों को माल्यार्पित करके शुभकामनाएँ दीं तथा पुण्यार्जक श्री राजेन्द्रनाथूलाल जैन चेरिटेबल ट्रस्ट सूरत के ट्रस्टी श्री ज्ञानेन्द्र कुं०, संजय एवं नीरज गदिया परिवार द्वारा 5100/- एवं शाल, श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया गया।

प्राचार्य पं. लालचंद जैन, गंजबासौदा। (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड और आचार्य श्री विद्यासागर जी

मालती मड़बैया एम.ए. बुन्देली

भारत संतन उर सांपन कौ देश कहाउत। आदि काल सें इतै साधु-महात्मा होत आयै पै इन दिनन साँचे साधु, साँसउँ भौत कम दिखात। कै तौ ढोंगी, पाखण्डी, छली, ठगी मिलें कै पेट भरवे बारे भूँखे-भैरानें पीरे उन्ना पैरें फिरत मिलें। टी.वी. पै औ अखवारन में पढ़ पढ़ कें हैरान हैं कै फलानें साधु हत्या में, फलाँ साधु बलात्कार में पकरे गयै, कै जमीन औ' मंदरन पै कब्जा करत पकरे जात और कैउ राजनीतिक रोटी सेंकत मिल। अधिकाँश प्रवचन करवे बारे साधु-साध्वियाँ लाखन-करोड़न की सम्पदा बटोरत मिलत, कै नेतन के चक्कर लगाउत औ' कैउ राजनीतिक मुद्दन पै अपनौ प्रभाव जमाउत उर फिर पैसा खेंचत मिलत। कैउ तौ झूँटे, इलाज कर करकें अपनौ रंग जमाउत रत।... पै ऐसे किते संत मिलहें जिनें वास्तव में भौतिक दुनिया से कुछ मतलब हैई नइयाँ वे केवल आत्म साधना में रत होवे। वैराग्य कौ मतलब दुनियाँ सें पलायन करबौ नइयाँ पै दुनिया के राग-द्वेषन में लिप्त होवो सोउ नइयाँ। मानव जीवन मिलो सो उ खों तप-साधना सें कर्मबंध रहित हो कें अपनी आत्मा खों परमात्मा बनावे कौ प्रयास करवौ साँचे साधु कौ धर्म, भारतीय संस्कृति उर धर्म के आधार पै भये चइये।

उपरै कई गई बातन पै खरे उतरवे बारे दक्षिण के एक महान संत आचार्य विद्यासागर जू साँसउँ साँचे साधु के रूप में इन दिनन उत्तर भारत में भी खूब जानें मानें जात हैं। कैबे खों तौ बे जैनधर्म के मुनि हैं पै ऐसे कौनउँ धर्म वारे नइयाँ जो आचार्य विद्यासागर जू खों नई मानत होंय। कैउ तौ उनकी परीक्षा अनजानें में लै आये, एक पीर-तांत्रिक नें तौ हमें जा तक बताई कै कैउ ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उनके चारउँ तरफन चक्कर लगाउत रातीं, पै जब देखो कै इनें तौ अपनी आत्मा साधना के अलावा कछु अन्य बातन सें मतलबई नइयाँ तौ फिर मानै, कै ऐसे आ होत साँचे भारतीय साधु। साँसउँ में बाल ब्रह्मचारी, दिगम्बर/नग्न, एकाहारी, विद्वान्, तपःमूर्ति, बीतरागी, चौमासौ छोड़ निरंत पैदल चलवे वारे, स्वाध्यायी, कैउ भाषन के जानकार, कैउ प्रसिद्ध ग्रंथन के रचयिता, महाकवि बिना लयें-दयें सतत सब जीवन के कल्याणखों प्रवचन दैवे वारे, निःग्रंथ, निःस्पृही, अपरिग्रही, निःश्छल, बाल सुभावी सरल क्रोध-मान-माया-लोभ से रहित, तन पर धागे तक का संग्रह नहीं, काऊ सें मोह नहीं, काऊ सें प्यार या वैर नहीं,

प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री से लैंकें राजा महाराजा भी आयें तो उन्हें कछु लेना-देना नहीं, दुखी मनुष्य ही नहीं पशु/पक्षियों मतलब सबई जीवन के प्रति गैरी संवेदना जिनके मन में हमेशाई बनी रत ऐसे मुनि विद्यासागर जू आज बंदनीय है। पै आश्चर्य सब खों जो है कै मराझ विद्यासागर जू, दक्षिण के होकें बुन्देलखण्डई में कैउ सालन सें काय विचर रये? न तो जौ कौनउँ धनी-मानी क्षेत्र आय, न अब बड़े नेतन कौ, कै राजा महाराजन कौ असफेर आय, उर न कोउ उनें मनायें राखें हैं। हाँला कै बुन्देलखण्ड विपन्न होवे के बावजूद सदैव सूरमाओं कौ, कवियन कौ उर महात्मन कौ क्षेत्र रऔ आऔ है। भगवान राम तक खों कभउँ बुन्देलखण्ड, शरणस्थली बनो, ई सें तौ कवि रहीम नें कई ती कै-चित्रकूट में रम रहे रहिमान अवध नरेश।

जा पर विपदा परत है सो आवत एहि देश॥

मतलब जौ कै इतै तौ एक सें एक महापुरुष होते रये, सब प्रकार के साधु-संत इतै भय पजे। पै मुनिवर विद्यासागर जू की तौ बातई निराली है। सई तौ जा है कै वे न कोउ के मनायें मानत हैं और न कोउ कें भगायें भगत हैं, न उनकी कौनउँ कामना आय न कौनउँ जरुरत, न काउ कौ डर आय न कौनउँ लालच। चौबीस घण्टा में बस एक दार गर्म पानी पीनें उर एक दार अपनी बिना बताई, मन की प्रतिज्ञा सें, सादा, शुद्ध अहार, हात के खोवा सें, केवल ईसें लैने कौ जौ शरीर धर्म-साधना के लानें चलत रैवे। बस इत्तउ मतलब है उनें अपने शरीर सें। साबुन लगावौ कै बनाव-सिंगार तौ दूर की बात है न तो वे सपरत हैं, न दातौन करत आयें, पै शरीर सें तेज बरसत, बसात नइयाँ, उन्ना तौ पैरतई नइयाँ सो धोवे कौ कोनउँ अर्थइ नइयाँ, दाडी कै मूड़ के बार बनवाउतई नइयाँ केवल कभउँ कभउँ खुदई अपने हातन केश-लॉच करत हैं। प्रातः जंगल में नित्य क्रिया करकें स्वच्छता से 'प्रातः साधना', केवल एक पिच्छी, जीव-जन्तु खों दूर करवे के लानें और एक पानीभरो कमण्डल शौच के लानें ही उनके हात, संगै रत, गमन, अध्ययन, प्रवचन, आहार, स्वाध्याय, धर्म-चर्चा, कक्षा कै शिविर, साहित्य-सृजन, संध्या साधना और मौन ब्रत, अल्प शयन बस लगभग यही दैनंदिनी रहती है। जिनें दीक्षित करो केवल बेई साधु-साध्वियाँ कछु दिनन संगै रत हैं, चलत हैं। अपने मन सें कछु श्रावक कै भगत लोग संगै भले चले चलवें पै उनें इनकी दरकार नइयाँ। न गर्मियन

में पंखा चानें, ठंडन में उन्ना-लत्ता, न कमरा-रजाई चानें न बसकारे में छत्ता चानें। बसकारे के चार मइना गैल नई चलत सो कऊँ भी जितै जिनालय होवें उतई बिलम जानें।

हमने एकदार उनके संग के एक साधु सें दै पूँछी कै बड़े मराझ खों बुन्देलखण्डई काय भा गऔ। तब पतो लगे कै एक दार बे झाँसी असफेर में पवा तीरथ कोद गमन कर रये ते सो एक गाँव वारे जैनी खों पानी पीतन देखो, कै उनें छन्ना सें छानके अपनी गड़ई धोकें पानी पियो उर बिलछन सँवार के तुरतई कुआ में पल्ट के डारे दऔ। बस मुनि विद्यासागर खों जँच गई कै जितै के गाँव वारे अनपढ़ बानिया खों धर्म की जा समझ है कै पानी पीवें में एकउ जीव नई मर पावै, उतै साँचउँ जैन धर्म हमेशई जिंदा रै सकत। बस उनें बुन्देलखण्ड की श्रावक-क्रियायें ऐसी पवित्र, स्वच्छ और संवेदनशील लगीं कै अब बे कैउ सालन सें कुण्डलपुर, अमरकण्टक, सागर, नैनागिर, बीना बारहा, बहोरीबंद, पाटन कोनी, ललितपुर, सेरोन, बानपुर पपौरा, अहार, देवगढ़ सोनागिर, पनागर, जबलपुर बैतूल और जादाँ से जादाँ राम टेक तक हो के बुन्देलखण्डई में फिर लौट आउत। एई सें वे ई असफेर में धर्म साधना में बने रत। कैउ जाँगा सें प्रतिष्ठित श्रावकजन श्रीफल भेंट करवे आउत रत पै न उनें शहर की, न सेठ की न प्रदेश की कौनउँ दरकार आय बस जितै धर्माचरण निभत जाय, शांति सें तप में मन रमो रय भले जंगल होय, नईतर उनें बिना कोउ खों बतायें भुँसरा सें चल दैनें औ दूसरी जाँगा ज्ञान-ध्यान करने। जा सई है के बुन्देलखण्ड में दिगम्बर जैन तीर्थन कौ भण्डार है पै अगर मराझ की व्रत साधना न हो पाय तौ वे और कऊँ कैसे रै सकत? विद्यासागर मराझ ने साँसउ मुनि नाव की संस्था खों पुर्नजीवित करके नय प्रान फूँक दय। इयें प्रासंगिक बनाव, एक तरफ संकीर्णतायें छोड़ी और दूसरी तरफ शिथिलतायें क्षीण करीं। बुन्देलखण्ड के कैउ तीर्थन में उनके ठैरे भर सें सौनों सौ बरसन लगत, जीर्णोद्धार तौ होई जात। पै तीर्थन के विकास में आचार्यरी अकेले निमित्त भर बनत वे निर्माण, कै कमेटियन के चुनाव, कै धन संग्रह आदि में कौनउँ न रुच लेत न दखलंदाजी करत। जी तीरथ में पौँचत सो अनजान तपस्वी बनकेँ और तीरथ जब छोड़त तौ बिल्कुल्लई निर्मोही बनकेँ, लौट तक नई देखत। एई सें कैउ तीर्थन के निर्माण के काम अदबने रै जात। म. विद्यासागर जू कत जे सब समाज के काम आयें। हाँ कुण्डलपुर में कछु विशेष कारनन सें थोरी रुच दिखाई ती पै अब जादाँ उतै भी नई बीदत। बुन्देलखण्ड में जैनियन सें जाँदा, आचार्यश्री पै मुसलमान, ठाकुर औ' कैउ और जातन के भगत दीवानें है, वे अहिंसा धर्म अपना

रये है। माँस खैबौ, शिकार खेलबौ तौ कैउअन नें छोड़ दव। उनके प्रवचन सुनवे मनुष्य तौ ठीक, जीव जन्तु तक आ जात। हालाँ कै मराझ विद्यासागरजू ऐसे चमत्कारन सें सीधे इन्कार कर देत। वे कत, जे तौ जीव जन्तु आँय चाँ जाँय निकर परत।

आचार्य विद्यासागर जू कौ जनम कर्नाटक प्रदेश में बेलगाम के सदलगा गाँव में शरद पूनें के दिना सन् १९४६ में भव तौ। श्री मल्लप्पा पिता और माता का नाम था श्रीमती, विद्यासागर जू कौ बचपन कौ नाँव विद्याधर हतो और प्रारंभिक शिक्षा केवल नाँवी तक भई। पै अब वे प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड, मराठी, बुन्देली, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला के अधिकृत विद्वान् हैं। नर्मदा का नरम कंकड़, 'मूक माटी' और दोहों की महत्वपूर्ण कृति के संगै कैउ ग्रंथन के वे सृजेता है। आचार्य विद्यासागर जू के व्यक्तित्व औ' कृतित्व के संगै उनकी किताबन पैकैउ अनुसंधान/पी.एच.डी. हो चुकीं, लगातार हो रई। कैउ विश्वविद्यालयन में उनकौ साहित्य पढ़ाओ जा रऔ। उनके नाव पै कैउ संस्थान, कैउ पत्रिकायें चलाई जा रई। भारत में जिते संतन खों उनने दीक्षा दई उती और कौनउँ गुरुजी ने नई दई। उनकौ कैवो है संत बनवौ न तौ 'पार्ट टाइम जाँब' आँय न 'बुढ़ापे की विवशता'। आत्म कल्याण करने हैं तौ कौरी उमर में धर्म खों समझौ उर बचपनई सें आत्मोत्थान में लग जाओ। वे महिलाओं के तप करवे खों मौका देत औ' आज देश में सबसे बड़ौ संघ आचार्य विद्यासागर जू कौ 'महा संत-संघ' है जी में कैउ मुनियन के संगै शुल्लक, ऐलक उर महिला विदुषी साध्वियाँ है। जा कैवो कै वे मौड़ी-मौड़न खों संत बनवे खों मजबूर करत तौ दूर की बात है, साँसी तौ जा बात है कै उनसें दीक्षा लैवे के लानें अनेकन युवकन खों नंबर लगाउनें आउत और कैउअन खों तौ वर्षन इंतजार करने परत औ कैउअन खों तौ वे मनई कर देत। बड़े-बड़े इंजीनियर, डाक्टर, डिक्रीधारी, जज, अधिकारी उनसें दीक्षा लैकेँ अब अपने अलग आत्म कल्याण में लगे। कैउ उनके शिष्य मुनियन नें अब अपने अलग संघ बना लये।

एक शख्त परीक्षा लेत वे जवानन की, खरे उतरवे पैई वे अपने संघ में जगा देत। काय कै जैनधर्म कौ साधु बनवौ भौत कठन काम है, शायद सेना में भरती होकेँ प्रशिक्षण पावे सेंई जादाँ कठन। इतै खावौ, पीवौ, पैरवौ, हँसवो, रोवो तौ छूटतई है अपनी इच्छन खों नियंत्रित करके सबतराँ की महात्वाकांक्षन से उदास रैकेँ, इंद्रियन खों पूरी तराँ जीतनें परत-तब हो पाउत जैन और जैन संत।

75, चित्रगुप्त नगर, कोटरा, भोपाल-3

प्रश्नकर्ता- श्री आलोककुमार जैन, कलकत्ता
जिज्ञासा- देवों का शरीर कैसा होता है? उनको नींद, बुढ़ापा, आलस्य आता है या नहीं?

समाधान- देवों के शरीर के संबंध में श्री 'तत्त्व विचार सार' (रचयिता- आचार्य वसुनंदि) में इस प्रकार कहा है-

चम्मं रुहिरं मंसं मेहं अट्टिं तह वसा सोक्कं ।

सेम्मं पित्तं अंतं, मुत्तं पुरिसं च रोमाणि ॥ 270 ॥

णह दंत सिरणहारु, लाला सेयं च णिमिस आलस्स ।

णिद्दा तण्हा य जरा, अंगे देवाण ण हु अत्थि ॥ 271 ॥

सुइ अमलो वर वण्णो, देहो सुहफास गंध संपण्णो ।

वालरवितेज सरिसो, चारुसरुवो सया तरुणो ॥ 272 ॥

अणिमा महिमा लहिमा, पावइ पागम्म तह य ईसत्तं ।

वसियत्तकामरूवं, इत्तिय हि गुणेहि संजुत्तो ॥ 273 ॥

अर्थ- देवों के शरीर में चर्म, खून, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), चर्बी, शुक्र (वीर्य), श्लेष्मा (कफ), पित्त, आंत, मूत्र, मल तथा रोम नहीं होते। 270।

नाखुन, शिरायें, दांत, लार, पसीना, पलकों का झपकना, आलस्य, निद्रा, प्यास, बुढ़ापा ये सब भी देवों के शरीर में नियम से नहीं होते हैं। 271।

देवों का शरीर शुचि, निर्मल, श्रेष्ठ वर्णवाला, शुभ-स्पर्श तथा गंध से सहित, प्रातः व्यालीन-सूर्य के तेज के समान, सुन्दर स्वरूपवाला, सदा तरुण होता है। 272।

देवों का शरीर अणिमा (अणु के बराबर छोटा हो जाना), महिमा (मेरु जैसा बड़ा बन जाना), लघिमा (रुई जैसा हलका हो जाना), प्राकाम्य (इच्छित वस्तु को प्राप्त करना), ईशित्व (स्वामीपना होना), वशित्व (सबको वश में करनेवाला होना), कामरूपित्व (इच्छित रूप बना लेना) इन गुणों से अर्थात् ८ प्रकार की ऋद्धियों से युक्त होता है ॥ 273 ॥

ऐसा दिव्यशरीर देवों का होता है।

प्रश्नकर्ता- पं० जीवन्धरकुमार शास्त्री, सागर

जिज्ञासा- णमोकार मंत्र का असली उच्चारण क्या है? णमो अरिहंताणं या णमो अरहंताणं?

समाधान- आचार्य पुष्पदंत द्वारा श्री षट्खंडागम के प्रथम खण्ड के मंगलाचरण के रूप में इस महामंत्र की रचना हुई है। इस निबद्ध मंगल का वहाँ इस प्रकार उल्लेख है-

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥

इस प्रकार इस मंत्र का असली उच्चारण है। परंतु इसके प्रथम चरण के णमो अरहंताणं तथा णमो अरुहंताणं इस प्रकार दो तरह से भी उच्चारण प्राप्त होते हैं। ये उच्चारण भी अर्थ की अपेक्षा निर्दोष हैं। पू० आ० विद्यासागर जी महाराज ने एक बार बताया था कि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज को जब णमोकार मंत्र का तीन बार उच्चारण करना होता था, तब वे एक बार 'णमो अरिहंताणं', दूसरी बार 'णमो अरहंताणं' तथा तीसरी बार 'णमो अरुहंताणं' बोलते थे। अर्थात् ये तीनों ही उच्चारण निर्दोष हैं।

प्रश्नकर्ता- भूपाल नाना मगदूम, भिलवडी, सांगली

जिज्ञासा- भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति पर फण बनाना उचित है या नहीं? ऐसी मूर्तियाँ पूज्य मानी जायें या नहीं?

समाधान- वर्तमान में सभी तीर्थकरों की मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। उनमें से केवल भगवान् सुपार्श्वनाथ तथा भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति पर सर्प के फणों की रचना दृष्टिगोचर होती है। अन्य सभी मूर्तियाँ पूर्ण निष्परिग्रहता या निःसंग अवस्था की होती हैं। इस विषय में वास्तविकता तो यह है कि केवलज्ञान होने से पूर्व ही समस्त उपसर्ग दूर होने का नियम है। अतः इन मूर्तियों पर सर्प का फण नहीं बनाना चाहिये। इसी प्रकार भगवान् बाहुबली की मूर्ति पर भी बेलें चढ़ी हुई दिखाई जाती हैं। यह मूर्ति अरिहंत अवस्था की है, इस पर भी बेलों का अंकन नहीं होना चाहिये था। इस प्रश्न के उत्तर में एक बार पू० आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने बताया था कि यद्यपि ये सर्प के फण तथा बेलों का अंकन नहीं होना चाहिये था, परंतु भगवान् पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ पर उपसर्ग हुआ था। ये दोनों तीर्थकर महान् उपसर्गविजेता हुये हैं। तथा भगवान् बाहुबली मुनि अवस्था में एक वर्ष तक, एक ही स्थान पर इस प्रकार कायोत्सर्ग मुद्रा से स्थित रहे कि उनके शरीर की स्थिरता के कारण शरीर पर बेलें भी चढ़ गईं, इस प्रकार तपस्या की उत्कृष्टता दिखाने हेतु ऐसा अंकन किया जाता है। बड़े-बड़े आचार्यों ने इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा एवं वंदना की है। अतः इन मूर्तियों को पूज्य एवं निर्दोष मानते हुये, अरिहंत परमेष्ठी के बिम्बवत् इनकी पूजा करनी चाहिये।

अतः हम सभी को इन मूर्तियों पर सर्प का फण या बेलों के अंकन को उचित मानते हुये, पूर्ण भक्ति-भाव से वंदना, पूजा करना योग्य है। यह भी विशेष है कि भगवान् पार्श्वनाथ तथा भगवान् सुपार्श्वनाथ की मूर्ति पर यदि सर्प का फण न बनाया जाय, तो भी कोई आपत्ति नहीं, इनका अंकन नियामक नहीं मानना चाहिये तथा ऐसी धारणा भी नहीं बनानी चाहिये कि उपसर्ग दूर करनेवाला होने से धरणेन्द्र की महत्ता बताने को इस प्रकार की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी फणोंवाली मूर्तियों पर अभिषेक करते समय, फणों के ऊपर से जल की धारा न डालकर, भगवान् के मस्तक पर ही जल की धारा देनी चाहिये।

प्रश्नकर्त्ता- मनोज जैन, अजमेर

जिज्ञासा- सर्प चार इन्द्रिय होता है। उसके कान नहीं होते। वह सुनता भी नहीं है, ऐसा विज्ञान बताता है। फिर उसने भगवान् पार्श्वनाथ का उपदेश कैसे सुन लिया?

समाधान- सर्प के पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, मन भी होता है। इतना अवश्य है कि कोई-कोई पानी के सर्प असैनी होते हैं, परन्तु सबके पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं। विज्ञान यह नहीं कहता कि सर्प सुनता ही नहीं है। विज्ञान के अनुसार सर्प सुनता तो है, पर उसकी श्रवणशक्ति बहुत कम होती है। इस संबंध में 'दैनिक जागरण' दिनांक 14.6.2007 (भोपाल संस्करण) का यह समाचार उल्लेखनीय है- 'सर्प बहरे नहीं होते, हाँ उनके सुनने की क्षमता सीमित होती है। कारण यह है कि साँपों के बाहरी कान होते हैं। वह भी एक छोटी सी हड्डी, जो उनके जबड़े की हड्डी को भीतरी कान की नली से जोड़ती है। साँप ध्वनि को अपनी त्वचा से ग्रहण करता है और वह जबड़े की हड्डी से होती हुई भीतरी नली तक पहुँचती है। इस तरह वह सुन पाता है। हम 20 से लेकर 30 हजार हर्ट्ज तक की ध्वनि सुन सकते हैं जबकि साँप 200 से लेकर 300 हर्ट्ज तक की ध्वनि ही सुन सकते हैं।'

अतः सर्प के पाँचों इन्द्रियाँ तथा मन भी होता है इसीलिये भगवान् पार्श्वनाथ के द्वारा दिये गये उपदेश को सुनकर सर्प का जोड़ा देवपर्याय को प्राप्त हुआ।

प्रश्नकर्त्ता- सौ० कमलकुमारी, जबलपुर

जिज्ञासा- क्या हमको पुण्य तथा पाप को समान रूप से हेय मानना उचित है?

समाधान- इस सम्बन्ध में हमें सर्वप्रथम पुण्य तथा

पाप की परिभाषा देख लेनी चाहिये। श्री सर्वार्थसिद्धि अ.६/३ की टीका में इनकी परिभाषा इस प्रकार कही गई है-

1. **पुण्य-** पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्।

अर्थ- जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है, वह पुण्य है।

2. **पाप-** पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम्। तदसद्देहादि।

अर्थ- जो आत्मा को शुभ से बचाता है, वह पाप है। जैसे- असातावेदनीय आदि।

पुण्य तथा पाप के फल के संबंध में श्री धवला पु. 1 पृष्ठ 105 में इस प्रकार कहा है-

(अ) काणि पुण्ण फलाणि। तित्थयर गणहर रिसि-चक्कवट्टि-वलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहर रिद्धिओ।

अर्थ- पुण्य के फल कौनसे हैं? उत्तर-तीर्थकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।

(आ) काणि पाव फलाणि। णिरय-तिरिय-कुमाणुस-जोणीसु जाइ-जरा मरण वाहि-वेदणा-दालिहादीणि।

अर्थ- पाप के फल कौन से हैं? उत्तर-नरक, तिर्यच और कुमानुष की योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दरिद्रता आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त श्री तत्त्वार्थसार 4/103 का निम्नश्लोक भी इस संबंध में पठनीय है-

हेतु कार्य विशेषाभ्यां, विशेषः पुण्यपापयोः।

हेतु शुभाशुभौ भावौ, कार्ये चैव सुखासुखे ॥ 103 ॥

अर्थ- हेतु तथा कार्य की विशेषता होने से पुण्य और पाप में अंतर है। पुण्य का हेतु शुभ भाव है, और पाप का हेतु अशुभ भाव है। पुण्य का कार्य सुख है, और पाप का कार्य दुःख है।

उपर्युक्त लक्षण, फल, हेतु, कार्य आदि को जानकर यह कैसे कहा जा सकता है कि हमको पुण्य तथा पाप को समान रूप से हेय मानना चाहिये। यद्यपि वर्तमान में एकांतवादी लोग पुण्य और पाप को समान रूप से हेय मानते हैं, परन्तु उनकी मान्यता उपर्युक्त संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल उचित नहीं है।

श्री परमात्मप्रकाश गाथा 178 की टीका में इस जिज्ञासा का समाधान इस प्रकार दिया गया है-

अत्राह प्रभाकर भट्टः- तर्हि ये केचन पुण्यपापद्वयं समानं कृत्वा तिष्ठन्ति, तेषां किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति? भगवानाह-यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं त्रिगुप्तिगुप्त वीतराग-निर्विकल्प-परमसमाधिं लब्ध्वा तिष्ठन्ति तदा संमतमेव। यदि पुनस्तथाविधामवस्थामलभमाना अपि सन्तो गृहस्थाव-स्थायां दानपूजादिकं त्यजन्ति तपोधनावस्थायां षडावश्यादिकं च त्यक्त्वोभयभ्रष्टाः सन्तः तिष्ठन्ति तदा दूषणमेवेति तात्पर्यम्। अर्थ- ऐसा सुनकर प्रभाकर भट्ट कहता है- यदि ऐसा ही है तो कितने ही पुण्य-पाप दोनों को समान मानकर स्वच्छंद हुये रहते हैं, उन्हें आप दोष क्यों देते हैं? तब योगीन्द्रदेव ने कहा-जब शुद्धात्मानुभूति स्वरूप तीन गुप्ति से गुप्त वीतराग-निर्विकल्प समाधि को पाकर ध्यान में मग्न हुये पुण्य-पाप को समान जानते हैं, तब तो उचित है। परन्तु जो मूढ़ परमसमाधि को न पाकर भी गृहस्थ अवस्था में दान-पूजा आदि शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं, और मुनिपद में छह आवश्यकों को छोड़ देते हैं, वे दोनों ओर से भ्रष्ट हैं, तब उनको दोष ही है।

उपर्युक्त प्रकरण से स्पष्ट है कि परमसमाधिकाल में दोनों को हेय मानना उचित कहा गया है। हम गृहस्थियों के लिये तो पुण्य तथा पाप में समानता कैसे हो सकती है? हम गृहस्थियों को तो 'प्रवचनसार' गाथा 254 की आ.

अमृतचन्द्र की निम्नलिखित टीका के अनुसार शुभोपयोग (पुण्य) को पापवत् हेय न मानते हुये, शुभोपयोग की मुख्यता ही रखनी चाहिये। टीका-'गृहिणां तु समस्तविरतेर-भावेन शुद्धात्मप्रकाशनस्याभावात्कषायसद्भावात्प्रवर्तमानोऽपि स्फटिक संपर्कणार्कतेजस इवैधसां रागसंयोगेनाशुद्धात्मनोऽनुभवात् क्रमतः परमनिर्वाण-सौख्यकारणत्वाच्च मुख्यः।'।

अर्थ- वह शुभोपयोग गृहस्थों के तो सर्वविरति के न होने से शुद्धात्मप्रकाशन के अभाव के कारण कषाय के सद्भाव में प्रवर्तमान होता हुआ, जैसे ईंधन को स्फटिक के संपर्क से सूर्य के तेज का अनुभव होता है इसी प्रकार राग के संयोग से अशुद्ध आत्मा का अनुभव होने से, क्रमशः परमनिर्वाणसुख का कारण होने से, मुख्य है। अर्थात् गृहस्थों के शुभोपयोग की मुख्यता है।

जिज्ञासा- देव-लोग किस भाषा में बोलते हैं?

समाधान- शास्त्रों में ऐसा कोई वर्णन पढ़ने में नहीं आया कि देवों की भाषा कौनसी है? इस प्रश्न को मैंने पू० आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज से एक बार निवेदन किया था, तब उन्होंने कहा था कि संस्कृत को देववाणी कहते हैं। अतः शायद देव संस्कृत में बोलते हों। इसका कोई आगमप्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

गुरु के गुण अपार

1

गुरुदेव को सूरज कहूँ तो, सूरज में आग है,
गुरुदेव को चन्दा कहूँ तो चन्दा में दाग है,
गुरुदेव को सागर कहूँ तो सागर में झाग है,
पर सच पूछो तो गुरुदेव में वैराग्य ही वैराग्य है।

2

माता तो तन को जन्म देती है,
जिनवाणी माँ शिवपथ ही दिखा देती है,
पर बंधुओं गुरु की कृपा तो,
मोक्ष जाने तक साथ देती है।

3

माता के भी उपकार चुका सकते हैं,
दाता के भी उपकार चुका सकते हैं,
पर करोड़ों जीवन में भी,
गुरुदेव के उपकार को चुका नहीं सकते हैं।

4

सूरज के दर्शन से नीरज खिल जाता है,
पारस के स्पर्शन से लोहा सोना बन जाता है।
यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, बंधुओं,
विद्यासागर के दर्शन से पापी भी, परमात्मा बन जाता है।

5

जो जल से भरा है, उसे सागर कहते हैं,
जो रत्नों से भरा है, उसे रत्नाकर कहते हैं,
जो तम को भगा देता है, उसे दिवाकर कहते हैं,
जो गुणों से लबालब भरा है, उसे विद्यासागर कहते हैं।

सङ्कलन
सुशीला पाटनी
आर.के. हाऊस,
मदनगंज-किशनगढ़

समाचार

बैग और रसीद बुक ट्रेन में गुम

हमारे संस्थान श्रमण ज्ञान भारती सिद्ध क्षेत्र जैन चौरासी, मथुरा से छात्र विद्वान् पर्यूषण पर्व में दलपतपुर-सागर (म.प्र.) प्रवचन हेतु गये। रास्ते में ट्रेन में से बैग गुम हो गया था। जिसमें संस्थान की-

रसीद नं. 251-300

कूपन नं. राशि

301-350 100/- रुपये वाला

251-300 200/- रुपये वाला

601-650 500/- रुपये वाला

आदि थे। यदि कोई इस नाम के रसीद या कूपन लेकर दान हेतु आपके समाज में आये तो रसीद व कूपन न कटाए एवं निम्न पते पर हमें सूचित करें-

जिनेन्द्र शास्त्री, अधीक्षक

द्वारा श्रमण ज्ञान भारती छात्रावास

दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र, चौरासी, कृष्णा नगर, मथुरा।

फोन नं. 0565-2420323, मो नं. 9412626524

जिनेन्द्र शास्त्री, अधीक्षक

पं० नाथूराम जी प्रेमीकृत 'जैन साहित्य और इतिहास' का तृतीय संस्करण प्रकाशनाधीन

जैन साहित्य और संस्कृति के अद्वितीय विद्वान् स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी द्वारा रचित सुप्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'जैन साहित्य और इतिहास' का तृतीय संस्करण सन्मति ट्रस्ट मुम्बई द्वारा शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशित होने पर त्यागियों, शोध-छात्रों और पुस्तकालयों को भेजने की योजना है।

देवेन्द्र जैन

चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी

महाराज का समाधिदिवस समारोह

श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन मंदिर, इटावा (बीना म.प्र.) में संत शिरोमणि आ. श्री विद्यासागर जी महाराज की विदुषी शिष्या आर्यिका श्री १०५ मृदुमति माताजी के ससंघ सान्निध्य में दिनांक १३/०९/२००७ को बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आ. श्री १०८ शांतिसागर जी महाराज का ५२वाँ समाधिदिवस अति उत्साह के साथ मनाया गया।

श्रेयांस जैन शास्त्री, बीना

प्रतिष्ठाचार्य पंडित कान्तिलाल जी पगारिया नहीं रहे

जैन जगत् के ख्यातनाम प्रतिष्ठाचार्य, मंदिरशिल्प-वास्तुशास्त्री, प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य, शीर्षस्थ विद्वान् पंडित श्रीमान् कान्तिलाल जी पगारिया निवासी सागावाड़ा जिला-डूंगरपुर (राज.) का उनके स्वनगर सागावाड़ा में गुरुवार 27 सितम्बर 2007 को 55 वर्ष की आयु में मध्याह्न में 2 बजकर 45 मिनट पर सागावाड़ा जैनसमाज के प्रबुद्धजनों एवं परिजनों की उपस्थिति में णमोकार महामंत्र का श्रवण करते हुए हृदयगति रुक जाने से आकस्मिक निधन हो गया।

महावीर जैन, सागावाड़ा

जिला- डूंगरपुर (राजस्थान) 314025

२१वीं जैन कैरियर काउंसलिंग सम्पन्न

परम पूज्य सराकोद्धारक उपाध्यायरत्न श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज के मंगल सान्निध्य में ८ सितम्बर २००७ को २१ वीं जैन कैरियर काउंसलिंग का आयोजन जूड़ी तलैया, फूटा ताल-जबलपुर (म.प्र.) में सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। दो दिवसीय इस कैरियर काउंसलिंग का शुभारंभ श्री ए. एस. मेहता (मार्केटिंग डायरेक्टर, जे.के. इण्डस्ट्रीज आफ वर्ल्ड), श्री बी.के. शर्मा, श्री रीतेश शर्मा (टाइम्स डायरेक्टर), श्री संजय जैन, दिल्ली के कर कमलों द्वारा दीपप्रज्वलन से हुआ।

सुनील जैन 'संचय', शास्त्री

कारंजा (महाराष्ट्र) में संस्कार-शिविर सम्पन्न

समाज के युवाओं, युवतियों, बालकों एवं बालिकाओं तथा वृद्धों में श्रावक के संस्कार डालने का प्रयास प.पू. मुनि १०८ श्री समतासागर जी एवं ऐलक श्री निश्चयसागरजी द्वारा पर्यूषण पर्व के पावन प्रसंग पर एक सराहनीय कदम था।

आधुनिकता की होड में आज समाज के अधिकांश नर-नारी में जैनत्व एवं जैनश्रावक के संस्कार लुप्तप्रायः होते जा रहे हैं।

शिविर का आयोजन कर मुनिश्री एवं ऐलक श्री ने अपने मार्मिक प्रवचनों द्वारा जन-जन में श्रद्धा जाग्रत कराई, धर्म का श्रद्धान कराया एवं धार्मिक ज्ञान को सुदृढ़ बनाया तथा प्रेक्टिकल द्वारा विभिन्न क्रियायें करवाकर क्रियावान् बनाया। इस प्रकार पर्वराज पर्यूषण के पावन पुनीत प्रसंग

पर सच्चे श्रावक के संस्कार का बीजारोपण किया गया।

प्रफुल्ल आग्नेकर (जैन)
कारंजा (लाड) जि- वाशिम (महा.)

श्री भारतवर्षीय दिगम्बरजैन महासभा का संयुक्त प्रादेशिक अधिवेशन भोपाल में सम्पन्न

श्री भारतवर्षीय दिगम्बरजैन महासभा का संयुक्त प्रादेशिक अधिवेशन मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में ९ सितम्बर, २००७ को वृन्दावन गार्डन में आयोजित किया गया।

अपार जन समुदाय के बीच समारोह के मुख्य अतिथि माननीय श्री अखण्ड प्रताप सिंह, मंत्री-मध्यप्रदेश शासन, अल्पसंख्यक विभाग ने कहा कि जैन समाज व जैनधर्म को मैं अपने से अलग नहीं मानता।

इस अवसर पर विशेषरूप से उपस्थित 'मध्यप्रदेश हथकरघा एवं हस्तशिल्प विकास निगम' के अध्यक्ष माननीय श्री कपूरचन्द्र जी घुवारा ने कहा कि सन् 1977 से जबसे उन्होंने विधानसभा चुनाव लड़ना शुरू किया है, मुझे किसी भी जैन परिवार से वोट माँगने नहीं जाना पड़ा, पर यह गर्व की बात है कि फिर भी जैनसमाज ने मेरा हमेशा साथ दिया।

राजनीति में अच्छे लोगों को आना चाहिए। राजनीति आपके हाथ में रहेगी, तो आपका धर्म, संस्कृति तथा आप सुरक्षित रहेंगे। इस मौके पर नगर निगम भोपाल के महापौर श्री सुनील सूद ने कहा कि वही समाज तरक्की करता है जो संगठित होता है। जैनसमाज में एकता भी है और संगठन भी। जैनसमाज का उन्हें भरपूर आशीर्वाद मिला है।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए राष्ट्रीय अध्यक्ष माननीय श्री निर्मलकुमार जी सेठी ने कहा कि राजनीति के अस्तित्व के बिना हम सुरक्षित नहीं हो सकते। मध्यप्रदेश में जैन समाज को अल्पसंख्यक होने के बाद भी कोई सुविधा व प्रतिनिधित्व नहीं है।

धर्म संरक्षिणी-महासभा के प्रांतीय अध्यक्ष श्री अजितकुमार पाटनी ने अधिवेशन में प्रदेश एवं देश के विभिन्न स्थलों से पधारे सभी सम्माननीय प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए महासभा के लक्ष्य एवं कार्यक्रमों के संबंध में जानकारी दी।

कार्यक्रम को संचालित कर रहे धर्म संरक्षिणी-महासभा के प्रांतीय महामंत्री श्री सुभाष काला ने कहा कि हमें संगठित होना पड़ेगा, नहीं तो हमें प्रतिनिधित्व व अधिकार नहीं मिलेंगे।

समारोह के मध्य राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री सेठी जी ने श्री विनीत गोधा, एडवोकेट एवं श्री अशोक जैन 'भाभा' को नवगठित राजनैतिक मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का सदस्य एवं श्री पुनीत गोधा को तीर्थ संरक्षिणी-महासभा का उपाध्यक्ष मनोनीत किया। श्री शिखरचन्द्र जी गोधा एडवोकेट, श्री शिखरचन्द्र जी दाल मिल एवं श्री मनोहरलाल जी टोंग्या को भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ट्रस्ट का ट्रस्टी घोषित किया गया।

भारतीय पुरातत्व विभाग के अधीक्षक डॉ० के.के. मोहम्मद ने भी प्रदेश में उपलब्ध अपार जैन पुरातत्व के मौजूद होने की जानकारी दी तथा उसके संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

अजितकुमार पाटनी, भोपाल

षड्दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।

निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

नींद, सुस्ती, भय, क्रोध, आलस्य और देरी से काम करना, ये छह दोष सफलता चाहनेवाले पुरुषों को छोड़ देना चाहिए।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।

सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥

सत्य, दान, आलस्यहीनता, दूसरे में दोषारोपण नहीं करना, क्षमा और धैर्य, ये छह गुण उन्नति चाहनेवाले पुरुष को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये।

60 वर्ष से ऊपर के धर्मप्रेमी बन्धुओं के लिये गंभीरता से विचारणीय बिन्दु

जो भाई-बहन—

- (क) वर्तमान में मुनि-आर्यिका बनने में असमर्थ हैं।
- (ख) जिनकी पारिवारिक जिम्मेदारी पूर्ण हो चुकी है।
- (ग) इस बहुमूल्य पर्याय का शेष जीवन बिताने के लिए जिन्हें और अर्थ की आवश्यकता नहीं है।

उनके लिये—

धर्मध्यान पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये सम्मेशिखर जी के पादमूल में अवस्थित प्राकृतिक छटा से विभूषित आध्यात्मिक संत पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी एवं पूज्य श्री जिनेन्द्र जी वर्णी की साधना-स्थली श्री पार्श्वनाथ दि. जैन शान्ति निकेतन उदासीन आश्रम इसरी, पूर्वी भारत में गौरवपूर्ण अद्भुत स्थान है। आत्मसाधना के लिए इस क्षेत्र का चुनाव करें, क्योंकि क्षेत्र का भी आत्मा पर काफी प्रभाव पड़ता है। घर-परिवार में रहते हुये परिणामों का निर्मल रहना दुष्कर है।

प्रत्येक कार्य का एक लक्ष्य होना चाहिए। जीवन जीना भी एक कार्य है। क्या हमने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है? यदि नहीं बनाया है, तो विचार करके अब बना लेना चाहिये। विचारोपरान्त यदि लक्ष्य ठीक न हो तो बदलकर उसकी प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये। लक्ष्य प्राप्ति के लिए पूर्ण समर्पण की परम आवश्यकता है। अचानक लक्ष्यप्राप्ति के पूर्व यदि देहावसान भी हो जाये, तो उस कार्य की पूर्णता के लिये अगली पर्याय में अवश्य ही सुविधा व अवसर की प्राप्ति होगी।

निम्न बिन्दु विचारणीय हैं—

१. इस बहुमूल्य-पर्याय का कितना समय और बचा है?
२. शरीर किस प्रकार शिथिल होता जा रहा है?
३. चित्त की चंचलता किस प्रकार समाप्त कर आत्मबल बढ़ाया जाये?

४. बीमारी तथा वृद्धावस्था का समय निकाल देने पर साधना के लिये हमारे पास कितना समय बचा है?
५. अब शास्त्रज्ञान वर्धन के लिए कितना समय तथा सामर्थ्य हमारे पास बचा है?
६. अब तक जो कुछ भी शास्त्रज्ञान प्राप्त किया है, क्या वह हमारे आत्मकल्याण के लिये पर्याप्त नहीं है?
७. मोह का बन्धन ढीला पड़ जाये, क्या इस प्रकार का प्रयास करने का समय नहीं आ गया है?
८. घर-परिवार से दूर, किसी अच्छे क्षेत्र पर सत्संगति में रहने का समय अब आया कि नहीं?

इस प्रकार गंभीरता पूर्वक विचारकर अधूरी पारिवारिक तथा सामाजिक जिम्मेदारियाँ पूरी कर, नये सिरे से जीवन प्रारंभ कर देना चाहिये। जिस प्रकार से हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये स्वयं को तैयार करते हैं उसी प्रकार इस पर्याय को छोड़कर अगली पर्याय में जाने की तैयारी, अब शुरु करने का समय आ गया है। कृपया इस पर विचार करें।

वर्तमान में उदासीन आश्रम-इसरी, आत्मसाधना के लिये सर्वश्रेष्ठ स्थान है। पधारने की पूर्वसूचना देवें ताकि आवास/भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके। आगामी १/१२/०७/ से १५/१२/०७ तक अनेक धर्मप्रेमी भाई-बहन इसरी आश्रम में पधार रहे हैं।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन शान्ति निकेतन उदासीन आश्रम-इसरी बाजार 825107, (गिरिडीह) झारखंड

प्रचार मंत्री- संजयकुमार जैन
बीना जी (बारहा) देवरी, सागर (म.प्र.)

नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुणाः।

गुणस्याभरणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभरणं क्षमा॥

मनुष्य का भूषण रूप है, रूप का भूषण गुण है, गुण का भूषण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा है।



मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

शीशा देने वाला

रास्ते

चिड़िया !
पूरा आकाश
तुम्हारा है
हर बार
तुम अपने लिए
अपना रास्ता बनाती हो
सुदूर क्षितिज तक
आती-जाती
और चहचहाती हो
दुनिया ने
जितने रास्ते बनाये
उनमें लोग
कभी उजड़े
कभी भटके
कभी भरमाये
पर तुम्हारा
रास्ता साफ है
जिससे गुजरने पर
सारा आकाश
जैसा है
वैसा ही
रहता है ।

जब भी मैं
रोया करता
माँ कहती-
यह लो शीशा,
देखो इसमें
कैसी तो लगती है
रोनी सूरत अपनी
अनदेखे ही शीशा
मैं सोच-सोचकर
अपनी रोनी सूरत
हँसने लगता ।
एक बार रोई थी माँ भी
नानी के मरने पर
फिर मरते दम तक
माँ को मैंने खुलकर हँसते
कभी नहीं देखा ।
माँ के जीवन में शायद
शीशा देने वाला
अब कोई नहीं था ।
सबके जीवन में ऐसे ही
खो जाता होगा
कोई शीशा देने वाला ।

‘अपना घर’ से साभार

धर्मध्यान-स्वाध्याय का स्वर्ण अवसर

विद्यासागर तपोवन तारंगा जी सिद्धक्षेत्र पर रहकर शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के इच्छुक व्यक्तियों को तपोवन में निःशुल्क रहने की एवं भोजन की व्यवस्था के साथ साथ नियमित पूजन, स्वाध्याय, सामाजिक आदि धार्मिक कार्यक्रमों का लाभ प्राप्त होगा। तपोवन में डॉ. नेमीचन्द्र जी जैन खुरई, स्थायी रूप से आ गये हैं, अतः इच्छुक महानुभाव मन बनायें तथा तपोवन में पधारें। सशुल्क निवास करनेवालों का भी स्वागत है। शुद्ध भोजन की पूर्ण व्यवस्था है।

शिक्षण शिविर सूचना

सभी सहधर्मी बन्धुओं को सूचित किया जाता है कि विद्यासागर तपोवन, तारंगा जी, तहसील सतलासाणा, जिला मेहसाणा गुजरात में दिनांक 21.12.2007 से 31.12.2007 तक जैनधर्म संस्कार शिक्षण शिविर का विशाल आयोजन स्थायी विद्वान् डॉ. पं. नेमीचन्द्र जी जैन खुरई तथा श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर के योग्य विद्वानों की उपस्थिति में आयोजित हो रहा है। शिविर में उपस्थित होनेवालों को तपोवन में निःशुल्क भोजन एवं निवास की व्यवस्था रहेगी। शीघ्र मन बनायें तथा धर्मलाभ लें। तपोवन में रहकर स्थायी रूप से धर्मसाधना करने के इच्छुक सज्जन भी 21.12.2007 तक उपस्थित हों, ताकि स्थायी निवास के साथ शिक्षण शिविर का भी लाभ लिया जा सके।

संपर्क करें

कनुभाई मेहता

मंत्री

टेलीफोन नं. तपोवन - 02761-253485,

253430, 09427137048